Con. 3. 4.10.47
750

अंक 4

संख्या 10

शुक्रवार
25 जुलाई,
सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. परिचय-पत्र की पेशी और रजिस्टर पर हस्ताक्षर... 1
2. नियमों में संशोधन..... 1
3. संघ विधान समिति की रिपोर्ट..... 9

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 25 जुलाई, सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल, नयी दिल्ली में प्रातःकाल 10 बजे से आरम्भ हुई। अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद ने सभापति का पद ग्रहण किया।

परिचय-पत्र की पेशी और रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्न सदस्य ने अपना परिचय-पत्र उपस्थित किया और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

श्री मिहिर लाल चट्टोपाध्याय (पश्चिमी बंगाल : जनरल)।

नियमों में संशोधन

***अध्यक्ष:** आज के कार्यक्रम में पहला मद श्री श्रीप्रकाश का एक प्रस्ताव है।

***श्री श्रीप्रकाश** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"विधान-परिषद् की नियमावली के नियम 5 के पश्चात् निम्न नया नियम जोड़ दिया जाये:

'5-ए. नियम 4 और 5 में बतायी गयी व्यवस्था के बावजूद, भारत के गवर्नर-जनरल सम्राट की सरकार के 3 जून, 1947 ई. के वक्तव्य के अनुसार, यदि वे चाहें तो, उस वक्तव्य के 14 पैरा में उल्लिखित क्षेत्रों से विधान-परिषद् के लिये नये चुनावों का आदेश दे सकते हैं और ऐसा होने पर मान लिया जायेगा कि उपर्युक्त क्षेत्रों से पहले चुने गये सदस्यों ने, चाहे नियम 3 में निर्धारित विधि से परिषद् में उन्होंने स्थान ग्रहण किया हो अथवा नहीं-स्थान रिक्त कर दिये हैं और यह भी मान लिया जायेगा कि नवनिर्वाचित सदस्य उन स्थानों के लिए बाकायदा चुन लिये गये हैं।'

यह नियम 3 जून, 1947 ई. से अमल में आया समझा जायेगा।"

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री श्रीप्रकाश]

महोदय, मैंने यह प्रस्ताव सदन के सम्मुख तीन उद्देश्यों से रखा है। पहला उद्देश्य यह है कि मैं पिछले कुछ महीनों के दौरान घटित कुछ बहुत ही अवांछनीय घटनाओं को व्यवस्थित करना चाहूंगा। दूसरे, मैं इस परिषद् के सम्मान की रक्षा करना चाहता हूं और यदि आप मुझे कहने की अनुमति दें तो परिषद् के अध्यक्ष के रूप में मैं आपके सम्मान की रक्षा करना चाहता हूं और अन्त में, पिछले कुछ महीनों के दौरान जिस ढंग से बहुत सी चीजें की गई हैं उनके बारें में भी मैं अपनी आपत्ति दर्ज कराना चाहता हूं। परिषद् के बहुत से ऐसे पुराने सदस्यों को, जिन्हें आरम्भ में निर्वाचित किया गया था, सरसरी ढंग से बरखास्त कर दिया गया, नए चुनाव करवाकर उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित किए गए।

महोदय, जब पहली बार इस परिषद् का चुनाव हुआ–इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि यह किस प्रकार हुआ–तो यह एक प्रभुसत्ता सम्पन्न निकाय कहलाया जो यह स्पष्ट था और जिसे अपने प्रक्रिया संबंधी नियम बनाने का पूर्ण अधिकार था। यह बिल्कुल स्पष्ट था कि इस तरह की परिषद् का काम-काज इसके अपने संचालन संबंधी नियमों के बिना नहीं चल सकता और इसीलिये हमने एक नियमित पैम्फलेट तैयार किया था जिसमें इस सदन की प्रक्रिया संबंधी सभी नियम दिए थे। कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि उसे इन नियमों के अस्तित्व के बारे में जानकारी नहीं थी। यदि किसी ने इस पैम्फलेट को पढ़ने का कष्ट किया हो, तो उसकी नजर नियम 4 तथा नियम 5 पर अवश्य पड़ी होगी जिनमें सदस्यों द्वारा निर्धारित ढंग से अपने स्थान खाली करने के उपरान्त परिषद् के नए सदस्यों को चुनने का तरीका स्पष्ट भाषा में निर्धारित किया गया है। तथापि हुआ यह है कि इस सदन के पिछवाड़े में कुछ लोगों के बीच कुछ बातचीत हुई, कुछ समझौते हुए, कुछ सदस्यों को इस सदन से सरसरी ढंग से बरखास्त कर दिया गया और नए चुनाव करवाकर उनके स्थान पर नए सदस्य चुन लिये गए और हमें उस समझौते को मौन स्वीकृति देनी पड़ी। चाहे हम इसे पसंद करें या नहीं, वास्तविकता यह है कि नए सदस्य चुन लिए गए हैं और पुराने सदस्य निकाल दिए गए हैं और इस सौदेबाजी में हमारे प्रिय देश के दो टुकड़े कर दिए गए हैं। मेरे विचार में यह उपयुक्त समय है कि हम अपना एक नियम जोड़कर कम से कम इस प्रक्रिया को व्यवस्थित करें ताकि हम अपनी कुछ इज्जत तो बचा सकें और यह कह सकें

कि जो कुछ किया गया है वह हमारे द्वारा बनाए एक निश्चित नियम के अनुसार ही किया गया है।

महोदय, मेरा दूसरा उद्देश्य इस सदन तथा अध्यक्ष के सम्मान की रक्षा करना है। उन विनाशकारी दिनों में मैंने निस्सहाय होकर यह देखा कि उन वार्ताओं के दौरान आपके नाम का जगह-जगह उल्लेख हो रहा था और यह विश्वास दिलाया गया कि आपसे परामर्श किया गया है। अन्तरिम सरकार के सदस्य के नाते तथा कांग्रेस उच्च कमान के सदस्य के नाते आपसे परामर्श किया गया होगा, लेकिन इस परिषद् के अध्यक्ष के नाते आप इस तस्वीर में कहीं नहीं थे। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि आपसे परिषद् के अध्यक्ष के नाते परामर्श किया होता तो जैसा कि आप मर्यादाओं के बारे में अत्यौपचारिक रूप से सावधान हैं, आपने इस विषय पर निश्चित रूप से परिषद् को अपनी राय देने के लिये कहा होता।

जब आपने उस दिन परिषद् से यह पूछा कि क्या मुझे ऐसा साधारण प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति है, तो यदि परिषद् के अध्यक्ष के नाते आपसे परामर्श मांगा जाता तो ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर आप निश्चित तौर पर परिषद् की सलाह लेते। यदि आप हमें आश्वस्त करते कि चूंकि परिषद् का उस समय सत्र नहीं था, आपने परिषद् की ओर से इस प्रक्रिया के बारे में अपनी सहमति प्रदान कर दी थी, तो हम पूरी तरह संतुष्ट हो गए होते। आपको हमारी ओर से फैसला करने का पूरा अधिकार था। तथापि मैं तो यह कहूंगा कि परिषद् की पूरी तरह उपेक्षा की गई है। उस दिन जब पं. गोविन्दवल्लभ पंत ने दल के जनादेश का उल्लेख किया था, तो आपने ठीक ही कहा था कि परिषद् किसी दल को मान्यता नहीं देती। लेकिन यदि मैं भूल नहीं कर रहा हूं तो उन विनाशकारी दिनों के दौरान बार-बार दो प्रमुख दलों के नेताओं का समाचार पत्रों में प्रकाशित एक के बाद एक बयानों में उल्लेख किया गया। अत: जहां तक इस परिषद् का संबंध है, आप किसी दल को मान्यता नहीं देते, हमें उस समझौते को चुपचाप स्वीकार करना पड़ा जिसे हमारी पीठ के पीछे देश के प्रमुख दलों के नेता कहलाए जाने वालों ने किया था। इस संबंध में मैं यह महसूस करता हूं कि इस नियम के जुड़ जाने से किसी हद तक भूल का सुधार हो सकेगा और हमें कम से कम यह एहसास होगा कि जो कुछ किया गया है वह हमारी परिषद् के नियमों के अनुसार किया गया है।

[श्री श्रीप्रकाश]

अन्त में–और जहां तक मेरा संबंध है, यह सबसे महत्वपूर्ण है–मैं, जो कुछ हुआ है उसके विरुद्ध अपनी आपत्ति दर्ज कराना चाहता हूं। मैं नहीं समझता कि उन बयानों में उल्लिखित नेताओं या गवर्नर-जनरल के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण मामले में हमारे अध्यक्ष के नाते आपसे तथा परिषद् से परामर्श न करना उचित था। आप जानते हैं कि उन वार्ताओं के परिणामस्वरूप हमारे देश का विभाजन हो गया, जिसे हम पसन्द नहीं करते। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि मूल कार्य-विधि का अनुसरण किया जाता और इस परिषद् में चुने गये सभी व्यक्ति बैठक में भाग लेते और उनके सामने यह समस्या उचित रूप में उपस्थित की जाती तो हम स्वयं ही प्रसन्नता या खेदपूर्वक इसी व्यवस्था को स्वीकार कर लेते, जो अब हमारे सिर पर लाद दी गयी है। उस अवस्था में हमें कम से कम यही संतोष होता कि इस देश के प्रतिनिधि इस भवन में मिलकर बैठे और उन्होंने गम्भीर सोच-विचार के उपरान्त निश्चय किया कि कम से कम कुछ समय के लिये देश का हित इसी में है कि दो विधान परिषदें हों और देश के दोनों भागों में दो सरकारें हों। परन्तु हुआ यह है कि हमारे सम्मुख ऐसे ढंग से यह वस्तु उपस्थित की गयी कि साधारण व्यक्ति के लिये उसकी सराहना करना तो दूर रहा वह उसे समझ तक नहीं सकता। वर्तमान परिस्थिति में हमारे आगे इसके सिवाय और कोई चारा नहीं है कि जो कुछ हुआ है उसे खूबसूरती से मान लें। मुझे आशा है कि परिषद् की कार्यविधि में यह नया नियम जोड़ने के लिये यह सभा मेरे प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लेगी।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में मैं अपने को बड़ी कठिनाई में अनुभव करता हूं। परन्तु माननीय सदस्य की गलती को–अगर ऐसी कोई गलती है–दुरुस्त करने की इच्छा के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। यही नहीं, आपके सम्मान की रक्षा के सम्बन्ध में भी मेरी पूरी सहानुभूति है। और जहां तक बहुत सी हुई बातों के प्रतिवाद का सम्बन्ध है, मैं अपनी तटस्थता प्रकट करना उचित समझता हूं। यह सब बातें ऐसे विवश करने के ढंग से हुईं कि उनसे हम गरीबों का तो कुछ सम्बन्ध ही न था।

अब मैं प्रस्ताव के औचित्य के प्रश्न को लेता हूं। इसमें कहा गया है कि "भारत के गवर्नर-जनरल सम्राट की सरकार के 3 जून, 1947 के वक्तव्य के

अनुसार यदि वे चाहें तो उस वक्तव्य के पैरा 14 में उल्लिखित क्षेत्रों से विधान परिषद् के लिये नये चुनावों का आदेश दे सकते हैं....।" महोदय, इस प्रसिद्ध पैरा में निम्न क्षेत्र सम्मिलित हैं: (1) सिलहट, जो अब भारत के अधिकार क्षेत्र के बाहर है, (2) पश्चिमी बंगाल, जो अब भारत के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है, (3) और (4) पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब, जो भारत के अधिकार क्षेत्र के बाहर हैं, और (5) पूर्वी पंजाब, जो हमारे अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): महोदय, मैं जानना चाहता हूं कि इस नियम के सम्बन्ध में सम्राट की सरकार के वक्तव्य पर विवाद उठाकर माननीय सदस्य का कथन कहां तक संगत है। माननीय सदस्य ने उपर्युक्त वक्तव्य की चर्चा विस्तार से की है और उसके कुछ अंशों का उल्लेख भी किया है और इस सबका इस प्रस्ताव से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि वे पैरा 14 की चर्चा इसलिये कर रहे थे क्योंकि स्वयं प्रस्ताव में उसका उल्लेख है और इसी आधार पर वे अपने तर्क को आगे बढ़ा रहे थे। उनका कथन संगत है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** महोदय, मेरा दृष्टिकोण ठीक यही है। वास्तव में विचारणीय प्रस्ताव में भी अप्रत्यक्ष रूप से इन क्षेत्रों का हवाला दिया गया है। मैं पैरा 14 में उल्लिखित क्षेत्रों का ही हवाला दे रहा था।

यह भी कहा गया है कि इन सदस्यों के चुने जाने और प्रस्तावित चुनाव के परिणामस्वरूप मान लिया जाएगा कि पहले चुनाव में चुने गये सदस्यों ने अपने स्थान रिक्त कर दिये हैं। इस प्रकार यह मान लिया गया है कि पहले चुने गये सदस्य प्रस्तावित चुनाव होने तक अपने स्थानों पर बने होंगे। यद्यपि जहां तक मेरी जानकारी है, वे अपने इस्तीफे दे चुके हैं। यह भी प्रकट किया गया है कि प्रस्तावित चुनाव हो चुकने पर नव-निर्वाचित सदस्यों को—मेरा विश्वास है कि वे सदस्य जो बाद में चुने जायेंगे—3 जून से निर्वाचित माना जाएगा, जो कि एक अव्यावहारिक और मूर्खतापूर्ण बात है। मेरे विचार में तीन चुनावों का प्रश्न विचारणीय है—पहला चुनाव, दूसरा चुनाव जिसके द्वारा हममें से कुछ व्यक्ति निर्वाचित होकर आये हैं और प्रस्तावित तीसरा चुनाव। प्रस्ताव में दूसरे चुनाव की बिल्कुल उपेक्षा कर दी गयी है, जिसके द्वारा हम कुछ व्यक्ति परिषद् में आये हैं। इसका अप्रत्यक्ष रूप से यह भी अर्थ है कि दूसरे चुनाव में जो व्यक्ति चुने गये हैं उन्हें अपनी स्वीकृति कराने का कुछ भी अधिकार नहीं है और उनका स्थान तीसरे चुनाव में चुने गये

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

व्यक्ति ले लेंगे और इस परिषद् में हमने जो भी कुछ कहा या किया है उसे रिपोर्ट में से निकाल दिया जाएगा।

अब हमें तीसरे चुनाव के सम्भावित समय पर भी विचार करना चाहिये। दूसरा चुनाव 3 जून वाला वक्तव्य प्रकाशित होने से एक महीने के भीतर, यानी जुलाई के आरम्भ में हुआ। इस प्रकार तीसरा चुनाव इस तारीख से एक महीने के भीतर अर्थात् 25 अगस्त के आसपास हो सकता है। यदि ऐसा है तो इसमें गंभीर पेचीदगियां आ सकती हैं। प्रस्ताव में सभी क्षेत्रों में, जिनमें वे क्षेत्र भी शामिल हैं जो उस समय भारत से बाहर होंगे, चुनाव कराने का उल्लेख है। 15 अगस्त तक देश में एक नया परिवर्तन होगा। दो नए राज्य (डोमीनियन) अस्तित्व में आ जायेंगे और यह कहना एक गंभीर बात होगी कि वाइसराय, लार्ड मांऊटबेटन ऐसे क्षेत्रों में चुनाव कराने का आदेश देंगे जो उन क्षेत्राधिकार से बाहर होंगे। ऐसी परिस्थितियों में मैं यह कहूंगा कि यह प्रस्ताव अव्यावहारिक है। इससे गंभीर विसंगतियां पैदा होंगी। प्रस्ताव का उद्देश्य–कम से कम वक्ता ने ऐसा आभास दिया है–जो कुछ हुआ है उसे व्यवस्थित करना है। इसमें सदन के सम्मान की रक्षा करने की बात कही गई है। माननीय सदस्य का मानना है कि यदि तीसरा चुनाव होता है तो दूसरे चुनाव में चुने गए सदस्य ही स्वतः चुन लिए जाएंगे। मैं यह कहना चाहता हूं कि हममें से कुछ नहीं चुने जा सकेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि नए सदस्य चुनकर आएं। उस स्थिति में हम जैसे सदस्यों का तथाकथित नियमन की धज्जियां उड़ जाएंगी।

मैं यह पूछना चाहूंगा कि हमारे इस दृढ़ कथन का क्या होगा कि हम भारत के वफादार तथा कानून का पालन करने वाले नागरिकों की हैसियत से यहां आए हैं? यदि हमारी सदस्यता समाप्त हो जाती है, तो वह घोषणा पत्र यथावत् रहेगा या समाप्त हो जाएगा? और चौधरी खलीकज़मन साहिब के न चुने जाने की स्थिति में उनके द्वारा लीग ग्रुप की ओर से यहां राष्ट्रीय झंडे को दी गई स्वीकृति का क्या होगा? इसी तरह इतिहास रचने वाली उस महान पुस्तक पर हुए हमारे हस्ताक्षरों का क्या होगा? क्या उन्हें मिटा दिया जाएगा? जो यात्रा भत्ता तथा दैनिक भत्ता हमें मिला है उसका क्या होगा? क्या ये रुपये हमें वापस लौटाने होंगे या इन्हें चुने जाने वाले भावी सदस्यों को, जो हमारे कानूनी उत्तराधिकारी तथा प्रतिनिधि होंगे, देना होगा? ये कुछ गंभीर विसंगतियां हैं, जिनका इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की स्थिति में हमें सामना करना पड़ेगा। मैं यह पहले ही कह चुका हूं कि जिस

भावना के साथ यह प्रस्ताव लाया गया है, उसके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। तथापि यह प्रस्ताव अव्यावहारिक है। यह कहा गया है कि इससे सदन के सम्मान की रक्षा होगी। मेरा मानना है कि इससे अध्यक्ष के सम्मान की रक्षा नहीं होगी, बल्कि उसका उपहास होगा। माननीय अध्यक्ष ने अपने विवेक से हमें सदन की कार्यवाही में भाग लेने तथा अन्य कार्य करने की अनुमति दी है। यदि यह प्रस्ताव पारित होता है तो मेरे विचार में इससे हमारे अध्यक्ष की कार्यवाही का उपहास होगा। मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि माननीय सदस्य की वास्तविक इच्छा इस सदन के अधिकारों तथा सम्मान की रक्षा करना है, तो हम ऐसा यह सीधी घोषणा करके कर सकते थे कि हम दूसरे चुनाव को स्वीकार करते हैं। इससे दूसरे चुनाव भली प्रकार से नियमित हो जाएंगे। यदि कुछ अनियमितताएं भी हुई हैं, तो वे भी इससे नियमित हो जाएंगी और सदन के सम्मान और गरिमा की भी रक्षा होगी। मैं यह फिर कहूंगा कि माननीय सदस्य जिस भावना के साथ इस प्रस्ताव को लाए हैं, मेरी उससे पूरी सहानुभूति है, लेकिन इसमें कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां हैं और सदन के लिए सबसे अच्छा रास्ता यह होगा कि दूसरे चुनाव को स्वीकार किया जाए। इन शब्दों के साथ मैं यह कहूंगा कि अपने व्यावहारिक निहितार्थों के साथ इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया जा सकता और इसलिए मैं इसका विरोध करने की अनुमति चाहता हूं।

***हाजी अब्दुल सत्तार हाजी इशहाक सेठ** (मद्रास : मुस्लिम): क्या मैं माननीय सदस्य का ध्यान प्रस्ताव के उस खंड की ओर आकर्षित कर सकता हूं जिसमें कहा गया है कि यह नियम 3 जून, 1947 से पूर्वप्रभावी होगा?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** इससे किसी भी तरह समस्या हल नहीं होती। मुद्दा यह है कि क्या वे सज्जन, वे माननीय सदस्य जो चुने गए हैं, तीसरे चुनाव में निर्वाचित होंगे? क्या कोई इस बात की गारंटी दे सकता है? वही माननीय सदस्य दोबारा चुने जाते हैं, तो पूर्व-प्रभाव वाले इस खंड का कोई अर्थ है। जहां तक मेरी विनम्र राय है, ऐसे सदस्यों के लिये जो तीसरे चुनाव में पहली बार चुने जाएंगे, पूर्वव्याप्ति का कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रथम बैच तथा द्वितीय बैच के सदस्यों का परस्पर व्यापन हो जाएगा, क्योंकि प्रस्ताव के अनुसार वे कुछ समय के लिए साथ-साथ सदस्य होंगे। इन शब्दों के साथ मैं सम्मानपूर्वक इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्त प्रांत-सामान्य): महोदय, मैं इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने वाले माननीय सदस्य के साथ पूरी तरह सहमत हूं। इसके साथ-साथ मैं यह अवश्य कहूंगा कि मुझे इसे समझने में कठिनाई हो रही है। प्रस्ताव में महामहती सरकार के 3 जून के बयान के अनुसरण में गवर्नर-जनरल को भविष्य में भी कुछ कार्य करने की शक्ति दी गई है या दिए जाने का प्रस्ताव है। मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि हमारे नियमों में गवर्नर-जनरल को क्यों लाया जाना चाहिए। श्रीयुत श्रीप्रकाशजी का उद्देश्य स्पष्टतया किसी ऐसे कार्य को वैध बनाना है, जो हो चुका है। उनके अनुसार कोई गलत काम हुआ है और मैं उनसे सहमत हूं कि वह कार्य मर्यादा के भीतर नहीं किया गया है।

मैं इस बात से भी सहमत हूं कि उसे हमें नियमानुकूल बनाना चाहिये किन्तु ऐसा हमें अपने नियमों में कोई आधारभूत परिवर्तन करके नहीं करना चाहिये और न इस सम्बन्ध में भविष्य के लिये गवर्नर-जनरल को ही कोई विशेषाधिकार देना चाहिये। इसलिये महोदय, मैं सुझाव उपस्थित करता हूं कि प्रस्ताव को इस रूप में पास करने के स्थान पर संविदा नये सिरे से बनाने के लिये इसे एक समिति के सुपुर्द कर देना चाहिये। मेरा सुझाव है कि इस समिति में निम्न सज्जन रहें:

श्री श्रीप्रकाश,

सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, और

सर बी. एल. मित्तर।

यह कानूनी विषय है इसलिये मैंने इन तीन वकीलों के नाम उपस्थित किये हैं, यद्यपि श्री श्रीप्रकाश "प्रेक्टिस" करने वाले वकील नहीं हैं। मेरा ख्याल है कि नियमों के संशोधन के रूप में उपस्थित करने के स्थान पर इसे एक प्रस्ताव का रूप देने में अधिक समय नहीं लगेगा।

***श्री श्रीप्रकाश:** मेरे मित्र पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जो कुछ कहा है मैं उससे सहमत हूं। सच तो यह है कि अधिवेशन के आरम्भ में जब मैंने इस प्रस्ताव की सूचना दी थी, उन दिनों सीमाप्रान्त में जनमत संग्रह होने जा रहा था और तीन और सदस्य बर्खास्त होने वाले थे। ये सदस्य अब बर्खास्त किए जा चुके हैं और इसीलिये मैंने भविष्य के लिये गवर्नर-जनरल को यह अधिकार देने का सुझाव उपस्थित किया था। अब इस प्रस्ताव का खात्मा हो चुका है और जहां

तक मुझे समझ में आता है और जहां तक 3 जून, 1947 ई. के वक्तव्य का सम्बन्ध है, गवर्नर-जनरल को इस सम्बन्ध में कुछ भी करना शेष नहीं रह गया है। हम यह प्रस्ताव के रूप में भी कर सकते हैं, जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सुझाव उपस्थित किया है। मैं समिति नियुक्त किये जाने और नियमानुकूलता लाने के लिये प्रस्ताव उपस्थित किये जाने से भी पूर्णतः सहमत हूं। उस स्थिति में, मैं अपने प्रस्ताव को सभा की अनुमति से वापस लेना चाहूंगा।

प्रस्ताव, विधानपरिषद् की अनुमति से वापस लिया गया।

***माननीय श्री हुसैन इमाम** (बिहार : मुस्लिम): और आसाम के बारे में क्या होगा? वहां अभी चुनाव होने वाला है।

***श्री श्रीप्रकाशः** यह समिति आसाम के सम्बन्ध में भी विचार करेगी। उसे करना ही चाहिये।

***अध्यक्षः** मैं अभी यह कहने ही जा रहा था कि प्रस्ताव का जैसा मसविदा है उसमें यह कमी रह गई है। यह सिलहट के अलावा शेष आसाम पर लागू नहीं होता है। इसलिये मेरे विचार में सर्वोत्तम उपाय यही है, जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सुझाव उपस्थित किया है कि यह विषय एक उप-समिति के सुपुर्द कर दिया जाए और उप-समिति प्रस्ताव का मसविदा फिर से तैयार करे, क्योंकि जहां तक मुझे पता चला है उद्देश्य के सम्बन्ध में हमारे मध्य कुछ भी मतभेद नहीं है। अब मैं मान लेता हूं कि परिषद् की इच्छा इस प्रस्ताव को श्री श्रीप्रकाश, सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और सर बी. एल. मित्तर की उप-समिति के सुपुर्द करने की है।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संघ विधान समिति की रिपोर्ट

***अध्यक्षः** अब हम यूनियन कांस्टीट्यूशन कमेटी की रिपोर्ट पर विचार करेंगे। हम भाग 4 के खंड 6 को लेते हैं।

खंड 6

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरूः** महोदय, मैं उप-राष्ट्रपति से सम्बन्ध रखने वाले खंड 6 को स्वीकार करने का प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

"(1) राष्ट्रपति की अनुपस्थिति या उसकी मृत्यु होने, इस्तीफा देने, पद से हटाये जाने या अयोग्य होने या अपने पद के अधिकारों के उपभोग और कार्य करने में असफल होने की अवस्था में अथवा अन्य किसी ऐसी अवस्था में जबकि राष्ट्रपति का पद रिक्त रहे, उसके कार्य उप-राष्ट्रपति उस समय तक करता रहेगा जब तक राष्ट्रपति अपने कार्य फिर से करना प्रारम्भ न कर दे या नये राष्ट्रपति का चुनाव न हो जाए—जैसी भी अवस्था हो।

(2) उप-राष्ट्रपति का चुनाव संघीय संसद की दोनों सभाएं संयुक्त अधिवेशन में एकल हस्तान्तरणीय मतदान प्रणाली के माध्यम से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर गुप्त मतदान द्वारा करेंगी तथा उप-राष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होगा।

(3) उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष होगा।"

महोदय, मैं यह कहना चाहूंगा कि यदि और जब कभी इस प्रस्ताव में कुछ संशोधन पेश किए जाएंगे, तो मैं उन्हें स्वीकार करना चाहूंगा। ये संशोधन खंड की शब्द रचना को लेकर हैं और इस खंड की एक या दो खामियों को दूर किया जाना है। जहां तक उप-राष्ट्रपति की आयु का सम्बन्ध है, सदन की यह इच्छा है कि राष्ट्रपति की तरह उसकी आयु भी 35 वर्ष निर्धारित की जाए। मैं इसे स्वीकार करने को तैयार हूं।

(श्री ए.के. घोष ने अपना संशोधन संख्या 165 पेश नहीं किया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि खंड 6 के उप खंड (1) के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया जाए:

"(1) जब राष्ट्रपति संघ से अनुपस्थित हों या यदि उसकी मृत्यु होने, त्याग पत्र देने या पद से हटाए जाने के कारण राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाए या जब राष्ट्रपति बीमारी या किसी अन्य कारण से अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के अयोग्य हों, ऐसी अनुपस्थिति, ऐसी स्थिति या ऐसी अयोग्यता जैसी भी स्थिति हो, की अवधि के दौरान उसके कार्य उप-राष्ट्रपति करेगा।"

महोदय, मूल खंड में कतिपय ऐसे शब्द हैं जिनसे मेरे विनम्र विचार में कुछ कठिनाई पैदा होती है। मैंने इस संशोधन का सुझाव रखा है, ताकि सदन इस कठिनाई पर विचार करे और सदन या प्रारूपण समिति इन पर गौर करे। इस खंड में

कतिपय आकस्मिकताओं में ही उप-राष्ट्रपति को कार्य करने की अनुमति है। उप खंड (1) में राष्ट्रपति की अनुपस्थिति का उल्लेख है। मुझे यह स्पष्ट नहीं है कि कहां से अनुपस्थिति। हम जानते हैं कि प्रांतीय मंत्री अपनी अनुपस्थिति में भी अपने मुख्यालय से कार्य करते हैं। क्या राष्ट्रपति की अनुपस्थिति का अर्थ राष्ट्रपति की संघ से अनुपस्थिति है जब वह अपने क्षेत्र से बाहर विदेश जाता है या अपने मुख्यालय से बाहर जाता है? मैं समझता हूं कि इसका अर्थ संघ से अनुपस्थिति है। अपने संशोधन में मैंने इसी का समावेश करने का प्रयास किया है। दूसरी कठिनाई यह है कि उप-राष्ट्रपति को तब कार्य करना चाहिए जब अयोग्यता सिद्ध हो जाए। अयोग्यता का अर्थ तथा निहितार्थ निर्धारित करने में काफी कठिनाई है। राष्ट्रपति किसी ढंग से कार्य कर सकते हैं। कोई व्यक्ति इसका यह अर्थ लगा सकता है कि उसने अयोग्यता दिखाई है। राष्ट्रपति कह सकते हैं कि आलोचक उनकी योग्यता को समझने में असफल रहा है और अनेक अन्य लोग उनकी बात से सहमत हो सकते हैं। ऐसा कोई न्यायालय या न्यायाधिकरण नहीं है जो अयोग्यता के बारे में अपना निर्णय दे सके। तब प्रश्न यह उठता है कि "क्या राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में अयोग्य हो सकते हैं?" इससे वैसी ही अनिश्चितता पैदा होती है। अत: यह अनिश्चितता दूर होनी चाहिए। अयोग्यता एक बहुत ही सन्देहास्पद अभिव्यक्ति है जिसके कारण गम्भीर जटिलताएं तथा झंझट पैदा हो सकते हैं।

दूसरी शर्त है, "अपनी शक्तियों का उपयोग करने तथा कृत्यों का निर्वहन करने में असफलता।" यह शर्त भी उतनी ही अस्पष्ट है। यह स्पष्ट नहीं है कि "अपने पद की शक्तियों का उपयोग तथा कृत्यों का निर्वहन करने में असफलता" का क्या अर्थ है तथा इसके बारे में भी वही तर्क दिए जा सकते हैं तथा आपत्तियां की जा सकती हैं जो अयोग्यता के बारे में उठाई गईं थीं। अत: मैंने सदन के विचारार्थ एक उपखंड प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिसमें आधारभूत अंतर तथा आपत्तिजनक लक्षणों का लोप हो जाता है बशर्ते कि सदन इस पर विचार करे। जो प्रस्तावित उपखंड मैंने विचारार्थ प्रस्तुत किया है उसमें इसके अतिरिक्त कुछ भी नया नहीं है। मेरा निवेदन है कि इन गम्भीर बिन्दुओं पर विचार किया जाए और यदि सहमति हो तो जो उपखंड मैंने प्रस्तुत किया है उसके मूलतत्व को स्वीकार किया जाए। हम इस समय वास्तविक प्रारूप पर विचार नहीं कर रहे हैं, बल्कि कुछ कठिन समस्याओं, कतिपय आपत्तिजनक लक्षणों, सिद्धांतों को हटाने का प्रयास कर रहे हैं। संशोधन में कतिपय मूल तत्व हैं और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले माननीय सदस्य

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

से अनुरोध करता हूं कि वह इस पर विचार करें और यदि संभव हो तो इसमें अंतर्निहित मूल तत्वों को कार्यान्वित करें।

***अध्यक्ष:** मेरा अनुमान है कि आपके संशोधन में ".....जब राष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, इस्तीफे या पद से हटाये जाने के कारण" शब्दों के बाद "रिक्त हो" शब्द छूट गये हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** हां महोदय, "आकस्मिक रिक्तता" शब्द जोड़ देने चाहियें। जल्दी में इस गलती पर मेरी दृष्टि न पड़ी। आपने मेरा ध्यान जो आकृष्ट किया है, इसके लिये मैं आपका अनुगृहीत हूं। "रिक्त" शब्द भी उस स्थल पर जोड़ देना चाहिये, जहां ऊपर बताया गया है।

(श्री यदुवंश सहाय ने अपना संशोधन उपस्थित नहीं किया। इसकी सूची में 167 संख्या थी।)

***श्री बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"खंड 6 के उपखंड (1) से '..... या अयोग्य होने या अपने पद के अधिकारों से काम लेने या कार्य करने में असफल होने' शब्दों को निकाल दिया जाए।"

वास्तव में इस संशोधन के उपस्थित करने के कारणों और तर्कों पर पिछले भाषणकर्ता प्रकाश डाल चुके हैं। महोदय, मेरा निवेदन है कि ये शब्द अस्पष्ट ही नहीं अनावश्यक और व्यर्थ भी हैं–विशेषकर खंड के अन्य अंशों को ध्याान में रखकर, जिनमें विशेष अवस्थाओं के लिये व्यवस्था की जा चुकी है। यह कौन निर्णय करेगा कि राष्ट्रपति अयोग्य है या अपने पद के अधिकारों से काम नहीं ले पाया है या उसके कार्यों को करने में असफल हुआ है? इसका निर्णय किस आधार पर किया जाएगा? यह बहुत ही अस्पष्ट है और इसलिये इस उपखंड की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति अयोग्य पाया गया या अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सके तो उसे पद से हटाया जा सकता है। इसलिये महोदय, मेरा ख्याल है कि ऐसे अस्पष्ट उपखंड को रखना अनावश्यक तथा अनुचित है। इसलिये मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री गुप्ते! आपका संशोधन वैसा ही है जैसा कि अभी उपस्थित किया जा चुका है।

श्री सुब्रह्मण्यम्, श्री दिवाकर और श्री नजीरुद्दीन अहमद! आपके संशोधन वैसे ही हैं जैसा कि अभी एक उपस्थित किया जा चुका है।

(संख्या 166, 170, 171 और 172 के संशोधन उपस्थित नहीं किये गये।)

(सर्वश्री राजकृष्ण बोस और शिब्बनलाल सक्सेना ने अपने संशोधन उपस्थित नहीं किये। ये संशोधन संख्या 173 से 176 तक थे।)

***श्री डी.एच. चन्द्रशेखरिया** (मैसूर): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खंड (6) के उपखंड (2) के स्थान पर निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'(2) उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन उसी निर्वाचक-मंडल द्वारा होगा..'।"

***श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): महोदय, पूरक सूची में खंड 6 के उपखंड (1) के लिये एक संशोधन मेरे नाम पर है।

***अध्यक्ष:** मैं पूरक सूची के संशोधनों को भी लूंगा।

***श्री डी.एच. चन्द्रशेखरिया:** मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"खंड (6) के उपखंड (2) के स्थान में निम्न शब्द रखे जायें:

'(2) उप-राष्ट्रपति उसी निर्वाचक-मंडल द्वारा चुना जायेगा जो राष्ट्रपति के चुनाव के लिए लागू होगा और वही तरीका भी ग्रहण किया जाएगा और उप-राष्ट्रपति राज-परिषद् का अध्यक्ष भी होगा'।"

संघ-विधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव एक ऐसे निर्वाचक-मण्डल द्वारा करने की व्यवस्था की गयी है, जिसमें संघ-पार्लियामेंट की दोनों सभाओं तथा प्रांतीय सभाओं के सदस्य रहेंगे। उप-राष्ट्रपति का चुनाव सिर्फ संघ-पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के सदस्यों द्वारा ही किये जाने की व्यवस्था की गयी है। इसका मतलब यह हुआ कि उप-राष्ट्रपति के चुनाव में प्रान्तीय सभाओं के सदस्यों का कुछ भी हाथ नहीं रहेगा। कम से कम मैं तो समझ नहीं पाया हूं कि राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के चुनाव में यह भेद क्यों किया गया है? संघ में उप-राष्ट्रपति का महत्व राष्ट्रपति के ही समान है जैसा कि आप जानते हैं, उसे राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उसका काम करना पड़ेगा और उसके अतिरिक्त उसे उच्च धारा-सभा का सभापतित्व भी करना पड़ेगा। मेरा ख्याल है कि राष्ट्रपति का चुनाव करने वाले उसी निर्वाचक-मंडल का बिना किसी कठिनाई के प्रयोग किया जा सकता है जो

[श्री डी.एच. चन्द्रशेखरिया]

राष्ट्रपति का चुनाव करता है। संयुक्त राज्य अमरीका में उप-राष्ट्रपति का चुनाव वही निर्वाचक मंडल करता है जो राष्ट्रपति का चुनाव करता है। यही तरीका यहां भी अपनाया जा सकता है और इसका काफी फायदा भी होगा। अतएव मैं निवेदन करता हूं कि मेरा यह संशोधन बहुत ही तर्कसंगत है और सदन इसे सहर्ष स्वीकार करेगा।

***अध्यक्ष महोदयः** श्री संतानम्, मेरे विचार में बेहतर यह है कि इस समय आप अपना संशोधन पेश करें।

***श्री के. संतानम्:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि खंड 6 के उपखंड (1) के लिए निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया जाए:-
>
> 'राष्ट्रपति पद के रिक्त होने तथा उसे चुनाव द्वारा भरे जाने के बीच के अंतराल के दौरान और जब राष्ट्रपति अनुपस्थिति, रूग्णता या अन्य किसी कारण से अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो, तो उप-राष्ट्रपति उसके कर्त्तव्यों का निर्वहन करेंगे'।"

यह मुख्यतः प्रारूपण से संबंधित संशोधन है और बहुत से अन्य वक्ताओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इसमें परिवर्तन की आवश्यकता क्यों है। मैंने इसे अति संक्षिप्त तथा यथासंभव सुबोध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

(सर्वश्री राजकृष्ण बोस, ए. के. घोष, एच. बी. पटासकर, बृजेश्वर प्रसाद, एच. जे. खांडेकर तथा एस. वी. कृष्णमूर्ति राव ने अपने संशोधन संख्या 178 से 183 प्रस्तुत नहीं किए।)

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : सामान्य): महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि खंड 6 के उपखंड (3) के रूप में निम्नलिखित जोड़ा जाए तथा वर्तमान उपखंड 3 को उपखंड 4 के रूप में पुनः संख्या दी जाए:

> "ऐसी अवधि के दौरान जब उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति के स्थान पर कार्य कर रहे हों, परिषद्, यदि आवश्यक हो, अस्थायी सभापति का चुनाव कर सकती है।"

महोदय, उप-राष्ट्रपति राज्य सभा के पदेन सभापति होंगे। राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते समय वह राज्य सभा के सभापति के रूप में कार्य नहीं कर सकते। अतएव अस्थायी सभापति के लिए प्रावधान करना होगा और मेरे संशोधन द्वारा यही किया गया है।

(सर्वश्री राजकृष्ण बोस, एच.वी. पटासकर, तथा शिब्बनलाल सक्सेना ने अपने संशोधन संख्या 185 से 187 प्रस्तुत नहीं किए।)

***श्री डी.एच. चन्द्रशेखरिया:** अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम में जो संशोधन है वह इस प्रकार है:

> "कि खंड 6 के उपखंड (3) में संख्या तथा शब्द "5 वर्ष" के स्थान पर निम्नलिखित संख्या तथा शब्द रखा जाए:
>
> '4 वर्ष या नए उप-राष्ट्रपति का चुनाव होने तक, जो भी बाद में हो'।"

राष्ट्रपति के पद का कार्यकाल पांच वर्ष निर्धारित किया गया है और यह प्रस्ताव है कि उप-राष्ट्रपति के पद का कार्यकाल भी उतनी अवधि का रखा जाए। राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के कार्यकाल की अवधि एक समान रखने के पीछे मुझे कोई तर्क नजर नहीं आता।

राष्ट्रपति के मामले में यह कहा गया था कि वह पर्याप्त समय के लिए कार्य करते रहें ताकि नए पदधारी का चुनाव पूरा करने का प्रबंध किया जा सके। लेकिन ये कारण उप-राष्ट्रपति के मामले में लागू नहीं होंगे तथा उप-राष्ट्रपति के कार्यकाल की अवधि निचले सदन की अवधि के साथ समकालिक बनाना उपयुक्त और लाभप्रद होगा। जैसाकि मैंने कल स्पष्ट किया था कि इस व्यवस्था के अंतर्गत ज्यों-ज्यों वह दूसरे कार्यकाल से पांचवें कार्यकाल की ओर बढ़ता है, वह निचले सदन से दूर होता जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जो अधिक सुखद नहीं है।

सदन को ज्ञात होगा कि संयुक्त राज्य अमरीका में उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति के साथ चार वर्ष के लिए चुना जाता है और संघ के संविधान में उप-राष्ट्रपति के प्रावधान की कल्पना अमरीकी संविधान में विद्यमान पूर्वोदाहरण के प्रकाश में ही की गई होगी। यदि ऐसा है, तो हमें अन्यत्र अपनाई गई परिपाटी का अनुसरण करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अमरीकी संविधान 150 वर्ष पुराना है और उसको व्यवहार में लाते हुए अब तक काफी अनुभव हो गया होगा। हमारे अपने संविधान को तैयार करते समय अन्यत्र अपनाए गए सिद्धान्तों और तरीकों को स्वीकार करना उपयोगी होगा। किसी नई चीज, जिसके बारे में हम अधिक नहीं जानते, का आविष्कार करने की बजाए, अन्य देशों के अनुभवों का लाभ उठाकर ही हम अपने संविधान को अधिक परिपूर्ण और व्यावहारिक बना सकते हैं।

महोदय, मैं तो महसूस करता हूं कि उप-राष्ट्रपति के लिये 4 वर्ष की अवधि देश हित में है और विधान की दृष्टि से भी ठोस व्यवस्था है।

[श्री डी.एच. चन्द्रशेखरिया]

मैंने सुझाव उपस्थित किया है कि साधारण रूप से हम उप-राष्ट्रपति के लिये 4 वर्ष का कार्यकाल निर्धारित कर सकते हैं। परन्तु, जैसा कि संशोधन में कहा भी गया है, वह इस अवधि के बाद भी तब तक काम जारी रख सकता है जब तक कि नई धारा-सभा का चुनाव हो ले और नये उप-राष्ट्रपति को चुन लिया जाये। इस व्यवस्था से लाभ यह है कि उप-राष्ट्रपति का पद कभी खाली न रहेगा।

इसलिये मैं इस संशोधन को स्वीकार करने का अनुरोध परिषद् से करता हूं।

(संशोधन संख्या 189 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"खंड 6 में निम्न नया उपखंड (4) जोड़ दिया जाए:

'(4) खंड 4 की व्यवस्था आवश्यक परिवर्तनों के अनन्तर उप-राष्ट्रपति पर भी लागू होगी'।''

खंड 4 में कुछ शर्तें राष्ट्रपति के पद के लिये रखी गयी हैं। यह उचित जान पड़ता है कि ये शर्तें जहां तक लागू हो सकें, उप-राष्ट्रपति के पद के लिए भी लागू की जायें। इस संशोधन में सिर्फ मसविदे का ही महत्त्व है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पश्चिमी पंजाब : जनरल): जनाब प्रैसीडेण्ट साहब, जो अमेण्डमेण्ट मैं पेश करना चाहता हूं वह इस तरह है कि:

"उपधारा (3) के पश्चात निम्न नई उपधारा रखी जाये:

'(4) कोई व्यक्ति जिसने 35 वर्ष की आयु पूर्ण नहीं की है उपाध्यक्ष नहीं चुना जा सकता'।"

इस अमेण्डमेण्ट के बारे में मुझे ज्यादा वजूहात रखने की जरूरत महसूस नहीं होती। खुद हाउस ने क्लाज (3) को मानकार इस उसूल को तसलीम कर लिया है और हाउस उसूल पर committed है कि 35 साल से कम उम्र का आदमी प्रेसीडेण्ट नहीं बन सकता। चूंकि वायस प्रेसीडेण्ट को प्रेसीडेंट की जगह काम करना

है इसलिए बिला शक व शुबा वायस प्रेसीडेंट की 35 साल से कम उम्र न होनी चाहिये। इसके अलावा आनरेबुल मूवर (Mover) ने भी अपनी आमादगी इस तरमीम को मंजूर करने के बारे में जाहिर कर दी है। इसलिये मैं हाउस का वक्त मजीद दीगर वजूहात पर जाया नहीं करना चाहता।

(श्री मोहनलाल सक्सेना ने पहली पूरक सूची का संख्या 3 का संशोधन उपस्थित नहीं किया।)

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में यही संशोधन हैं, जिनकी सूचना मुझे मिली थी। अब ऐसा कोई संशोधन नहीं है, जिसकी किसी भी सदस्य ने सूचना दी हो। अब मूल खण्ड तथा संशोधनों पर बहस आरम्भ हो सकती है।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, खंड 6 के उपखण्ड 1 में व्यवस्था की गयी है कि अध्यक्ष की अयोग्यता या अपने पद के कर्तव्य और कार्य करने में असमर्थता की अवस्था में उप-राष्ट्रपति उन कार्यों को करेगा। दूसरे शब्दों में यदि राष्ट्रपति अयोग्य हुआ या अपने पद का कार्य न कर सका तो उप-राष्ट्रपति उसके स्थान पर काम करेगा। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में दो संशोधन हैं। संशोधन के शब्द इस प्रकार हैं कि:

" 'या अयोग्य होने या अपने पद के अधिकारों से काम लेने या कार्य करने में असफल होने' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि राष्ट्रपति अयोग्य हुआ अथवा अपने कर्त्तव्यपालन में असफल हुआ तो उप-राष्ट्रपति को उसके स्थान पर कार्य करने का अधिकार न रहे। अब प्रश्न यह है कि यदि राष्ट्रपति अयोग्य है या जान-बूझकर अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता तो उसके स्थान पर कौन काम करेगा? निश्चय ही राष्ट्रपति का काम करने के लिये कोई न कोई रहना ही चाहिये। जिन माननीय सदस्य ने यह संशोधन उपस्थित किया है उनके प्रति सम्मान की भावना रखते हुये भी मैं अनुभव करता हूं कि संशोधन निरर्थक है और इसीलिये मैं उसका विरोध करता हूं। महोदय, राज्य के दो प्रधान कर्मचारी हैं, राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति। यदि राष्ट्रपति बीमार हुआ तो उप-राष्ट्रपति उसके स्थान पर काम करेगा। किन्तु जब उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के स्थान पर काम करेगा तो इसकी कोई व्यवस्था नहीं है कि उस समय उप-राष्ट्रपति की जगह कौन काम करेगा?

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): मान लीजिये कि तीसरा व्यक्ति भी बीमार पड़ जाता है?

***मि. तजम्मुल हुसैन:** यदि उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति का काम करता है तो उप-राष्ट्रपति की जगह पर भी तो किसी को काम करना चाहिये। श्री गुप्ते का एक संशोधन है, जिसमें कहा गया है कि उप-राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति का काम करने पर उप-राष्ट्रपति का काम करने के लिये अस्थायी रूप से एक सभापति चुन लिया जाये।

महोदय, मेरे माननीय मित्र सिधवा ने बीच में हस्तक्षेप कर दिया। वे कहते हैं कि यदि तीसरा व्यक्ति भी बीमार पड़ा तो क्या होगा? यदि मैं उनके साथ सहमत होता हूं तो यही कहूंगा कि यदि ऐसा है तो चौथा व्यक्ति भी रख लीजिये। हमारे सामने संशोधन सिर्फ यही है कि एक सभापति होना चाहिये। मैं उसका समर्थन करता हूं।

श्री भार्गव ने अभी एक संशोधन उपस्थित किया है कि जिस प्रकार प्रजातंत्र के राष्ट्रपति के लिये उम्र की सीमा निर्धारित की गयी है उसी प्रकार वह उप-राष्ट्रपति के लिये भी निर्धारित की जानी चाहिये। मेरे विचार में यह संशोधन उचित है, क्योंकि राष्ट्रपति की मृत्यु इत्यादि की अवस्था में उप-राष्ट्रपति स्वयंमेव राष्ट्रपति हो जाता है, और यह बड़ी विचित्र बात लगेगी कि जब स्थायी राष्ट्रपति 35 वर्ष का है तो उप-राष्ट्रपति 22 या 21 वर्ष का होगा। मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

इन शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं।

श्री महमूद शरीफ (मैसूर): जनाबे सदर, मेरी यह राय है कि दफा 2 में से यह अल्फाज "अधिकारों के प्रयोग करने तथा अपने कर्त्तव्य के पालन करने में असफलता अथवा असमर्थता" हजफ कर दिये जायें। अगर इन अल्फाज को बहाल रखा जाये तो मैं समझता हूं कि बहुत-सी मुश्किलात होंगी और हमको बहुत-सी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। दफा 7 का यह मफूम है कि जो अख्तियारात सदर को तज़वीज किये जाते हैं, अगर उन अख्तियारात का बाकायदा इस्तेमाल न हो तो उसको हटा दिया जा सकता है। मेरे ख्याल में जो अख्तियारात सदर की तरफ से तज़वीज किये जाते हैं उसका चलाना एक relative term है और मुमकिन है कि आपकी नज़र में जो काम बाकायदा हो वह मेरी नज़र में

बकायदा न हो। मुमकिन है कि जिन अख्तियारात को मैं बेकायदे समझता हूं, दूसरे साहिबान उसको बाकायदा समझते हों, तो जैसा कि मैंने आपसे अर्ज किया है कि यह एक ऐसी चीज है जो बिल्कुल relative हैसियत रखती है। इसलिये मैं समझता हूं कि इन अल्फाज को हजफ कर दिया जाये और हजफ करने के बाद जो अल्फाज होंगे उनको बहाल रखा जाये। दूसरी मेरी यह अर्ज है कि नायब सदर का तकर्रुर Adult Sufferage किस बिना पर होना चाहिये था। सदर के इन्तखाब के मुतल्लिक मैंने जो तकरीर की है, मेरे पेश नजर यह तस्वीर रखी है। जहां तक सदर और नायब सदर का ताल्लुक है वह इन्तखाब विलरास्त किस बिना पर हो? अगरचे पण्डित नेहरू जी ने इसके खिलाफ बहुत-सी बातें कही हैं लेकिन मैं समझता हूं कि चूंकि मैं जम्हूरियत के उसूलों का परस्तार हूं, इसलिये मेरे ख्याल में यह मुनासिब होगा। अगर नायब सदर का इंतखाब Adult Sufferage बिनां पर हो। मैं इन अल्फाज के साथ जो तरमीम मेरे भाइयों ने पेश की है, उसकी ताईद करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू कुछ संशोधनों को स्वीकार करने की स्थिति में हैं। मैं उनसे ऐसे संशोधन स्वीकार करने को कहता हूं, क्योंकि इससे बहुत-सी बहस घट जायेगी।

***श्री बी. पोकर साहब बहादुरः** अध्यक्ष महोदय, एक नियम सम्बन्धी प्रश्न है। मैं अभी निवेदन करना चाहता हूं। जिन माननीय सदस्य ने अभी भाषण किया है उन्होंने स्पष्ट ही कुछ संशोधनों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं और इन्हीं में मेरा अपना संशोधन भी है। मैं नहीं जान सकता कि उन्होंने मेरे संशोधन का समर्थन या विरोध किया है और उसके सम्बन्ध में क्या कहा है? यह उचित ही है कि मैं उनके दृष्टिकोण को जान सकूं। इसलिये अध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपसे अनुरोध कर सकता हूं कि आप उन सदस्य से अपने भाषण का संक्षेप अंग्रेजी में कहने को कहें? वे ऐसा करने में समर्थ हैं। वे अंग्रेजी अच्छी तरह से जानते हैं।

***अध्यक्षः** मैं इसके पहले ही निर्णय दे चुका हूं कि मैं किसी सदस्य को किसी विशेष भाषा में बोलने के लिये विवश नहीं कर सकता। यदि सदस्य को कठिनाई है तो उन्हें पहले भाषण करने वाले सदस्य से बातचीत करके जान लेना चाहिये कि उनका दृष्टिकोण क्या है? (*हंसी*)

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** महोदय, जितने विभिन्न संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन्हें दो या तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। मैं अधिकांश संशोधनों से कम से कम इस अर्थ में अवश्य सहमत हूं कि खण्ड 6 जिस रूप में छपा हुआ है उसकी शब्द योजना उत्तम नहीं है। सबसे पहली बात "अयोग्यता" (Incapacity) की है––यह शब्द अच्छा नहीं है। जितने संशोधन उपस्थित किये गये हैं मेरे विचार में सबसे संक्षिप्त तथा स्पष्ट श्री संतानम् का है। इसमें उन सभी कठिनाइयों का निवारण हो जाता है जिनकी तरफ ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसलिये मैं उसे स्वीकार करता हूं। मैं श्री गुप्ते का संशोधन भी स्वीकार करता हूं कि खण्ड 6 में निम्न शब्दों को नये उपखण्ड (3) के रूप में जोड़ दिया जाये और वर्तमान उपखण्ड (3) को उप-खण्ड (4) कर दिया जाये:

"जिस अवधि में उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के स्थान पर काम करेगा। उसमें राज-परिषद् चाहे तो अपने स्थायी सभापति का चुनाव कर सकती है।"

मैं पण्डित ठाकुरदास भार्गव का भी संशोधन स्वीकार करता हूं कि उप-खण्ड (3) के बाद निम्न उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

"(4) ऐसा कोई व्यक्ति उप-राष्ट्रपति नहीं चुना जा सकता, जिसने 35 वर्ष की उम्र पूरी न कर ली हो।"

मेरे विचार में अब ऐसा कोई संशोधन नहीं है, जिसे मैं स्वीकार कर सकता हूं।

***श्री जगतनारायण लाल** (बिहार : जनरल): मैं कुछ स्पष्टीकरण चाहता हूं। उपखण्ड (2) में चुनाव का तरीका दिया हुआ है। उसमें कहा गया है:

"उप-राष्ट्रपति का चुनाव फेडरल पार्लियामेंट की दोनों सभाएं संयुक्त अधिवेशन में एकाकी हस्तांतरित मत-पद्धति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर गुप्त मत प्रदान-पद्धति से करेंगी और उप-राष्ट्रपति ही राज-परिषद् (कौंसिल ऑफ स्टेट्स) का अध्यक्ष भी रहेगा।"

यदि चुनाव केवल एक उप-राष्ट्रपति का होना है तो आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनाव होने से लाभ ही क्या है? विधान-परिषद् नियमावली के

खंड 6 उपखण्ड (6) में चुनाव "बाहर निकाल देने" की प्रणाली दी हुई है। मैं इस बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं कि जब एक ही उप-राष्ट्रपति का चुनाव होना है तब भी क्या आनुपातिक प्रतिनिधित्व आवश्यक है?

***अध्यक्षः** जिन लोगों के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि वे प्रतिनिधित्व के नियमों से परिचित हैं, उन्होंने मुझसे कहा है कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली उस अवस्था में भी लागू की जा सकती है जब केवल एक ही स्थान की पूर्ति करनी हो।

***श्री जगत नारायण लालः** महोदय, मैं जानता हूं कि राष्ट्रपति के चुनाव के लिये भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई है और हम उस नियम को स्वीकार भी कर चुके हैं। परन्तु फिर भी मेरे विचार से यह बताना हमारा कर्त्तव्य है कि जहां एक ही व्यक्ति चुना जाना हो वहां "बाहर निकाल देने" की पद्धति ही सर्वोत्तम है, जो विधान-परिषद् की नियमावली में पहले ही से दी हुई है। यदि वह नियम परिषद् को अच्छा लगे तो मेरा निवेदन है कि इतनी देर होने पर भी यह किया जा सकता है कि जब मसविदा अन्तिम रूप से तैयार किया जाये तो प्रस्तुत नियम के स्थान पर, जिसका एक स्थान की पूर्ति के लिये काम में लाये जाने का कुछ मतलब ही नहीं है, उसी नियम को लागू किया जाये।

***अध्यक्षः** जैसा कि मैं कह चुका हूं, जिन व्यक्तियों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे इन नियमों को जानते हैं, उनका कहना है कि इस प्रणाली का उपयोग वहां भी किया जा सकता है जहां सिर्फ एक ही उम्मीदवार का चुनाव करना हो। परन्तु यदि माननीय सदस्य को कोई सन्देह हो तो मैं श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर से इसके स्पष्टीकरण का अनुरोध कर सकता हूं।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल): महोदय, मेरा खयाल है कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कुछ भ्रम है। निश्चय ही उसे ऐसी अवस्था में भी अमल में लाया जा सकता है जब केवल एक ही स्थान की पूर्ति करनी हो। इस सिद्धान्त के लागू करने पर उम्मीदवार का पूर्ण बहुमत से चुना जाना निश्चित हो जाता है। यदि उम्मीदवार दो से अधिक हैं और आप साधारण बहुमत का नियम लागू करते हैं, तो यह भी हो सकता है कि जिस व्यक्ति को कुल पड़े वोटों के 51 प्रतिशत से भी कम वोट मिले हों, वह भी चुना जा सकता है। इसके विपरीत,

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

यदि आप आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अमल में लाते हैं तो मत हस्तांतरित प्रणाली के अनुसार उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत से निर्वाचित किया जा सकता है। यही कारण है कि जहां एक ही उम्मीदवार चुना जाने वाला हो वहां भी हम आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकाकी हस्तांतरित मत-पद्धति के द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था करते हैं।

***श्री जगत नारायण लाल:** महोदय, मैं इस सम्बन्ध में और अधिक विवाद जारी नहीं रखना चाहता। मेरा उद्देश्य सिर्फ परिषद् का ध्यान इसकी तरफ आकृष्ट करना ही था। मैं विधान-परिषद् नियमावली के खण्ड 6 के उपखण्ड (5) को पढ़ता हूं और सर गोपालस्वामी आयंगर का ध्यान उसकी तरफ आकृष्ट करता हूं। उपखण्ड (5) में कहा गया है :

"जहां चुनाव के लिए केवल दो उम्मीदवार हों, वहां जिसे बैलट में अधिक वोट मिलें उसी के निर्वाचित होने की घोषणा होनी चाहिए। यदि उन्हें बराबर वोट मिलें तो चुनाव चिट्ठी डालकर ऐसा किया जा सकता है।"

और उपखण्ड (6) इस प्रकार है:

"जहां दो से अधिक उम्मीदवार नामजद हुए हों और पहले बैलट में किसी उम्मीदवार को अन्य दोनों उम्मीदवारों को मिले कुल वोटों से अधिक वोट न मिले हों तो जिस उम्मीदवार को सब से कम वोट मिले हों उसे चुनाव के बाहर कर देना चाहिए और फिर बैलट डाला जाये और फिर सब से कम वोट जिस उम्मीदवार को मिलें उसे हर अगले बैलट से निकाल दिया जाये, और यह प्रक्रिया तब तक जारी रखी जाये जब तक कि एक उम्मीदवार के वोट शेष उम्मीदवार या उम्मीदवारों के कुल वोटों से अधिक पड़ें और इस उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित कर दिया जाये।"

महोदय, मेरा खयाल है कि श्री गोपालस्वामी आयंगर ने इसी प्रणाली की चर्चा की है। मुझे सन्देह है कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व में इस प्रणाली को सम्मिलित किया गया है।

***माननीय श्री हुसैन इमाम:** अध्यक्ष महोदय, क्या मैं स्पष्टीकरण करूं?

***अध्यक्ष:** हां।

***माननीय श्री हुसैन इमाम:** आनुपातिक प्रतिनिधित्व का आधारभूत सिद्धान्त संख्या निर्धारित करना है। संख्या का निर्धारण कुल वोटों में रिक्त स्थानों से एक अधिक संख्या द्वारा भाग देने और भजनफल में एक जोड़ने से हो जाता है। उदाहरण के लिये, यदि वोटर 100 हैं और रिक्त स्थान 1 है तो निर्धारित संख्या निकालने के लिये 100 भागित 2, जिसका परिणाम निकला 50, जिसमें 1 जोड़ दिया गया और इस तरह 51 संख्या आई। इस प्रकार 51 से कम वोट प्राप्त करने वाला कोई भी व्यक्ति चुना नहीं जा सकता। यदि किसी को इतने वोट नहीं प्राप्त होते तो निर्धारित संख्या पूरी नहीं होती। जिस व्यक्ति को सबसे कम वोट मिलते हैं उसे चुनाव से निकाल दिया जाता है। इसके बाद एक के बाद दूसरे चुनाव में वोट अन्य उम्मीदवारों के पक्ष में तब तक डाले जाते हैं जब तक किसी न किसी उम्मीदवार के 51 वोट न आ जायें। 51 वोट आते ही उस उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित कर दिया जायेगा।

चुनाव की यह विचारधारा फ्रांस की है। वहां राष्ट्रपति का चुनाव इस विचार से होता है कि उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त होना चाहिये। वहां बैलट भी बार-बार पड़ते हैं, किन्तु हमारे विधान निर्माताओं ने एकाकी हस्तांतरित मत-पद्धति स्वीकार करके प्रक्रिया को संक्षिप्त कर दिया है। उन्होंने उसी उद्देश्य की प्राप्ति कर ली है, जो फ्रांस वालों के आगे रहता है, किन्तु उनकी प्रणाली अधिक सरल और सीधी है।

***अध्यक्ष:** मेरे खयाल में इतना स्पष्टीकरण काफी है। क्या कोई सदस्य संशोधनों या मूल खण्ड के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता है?

***मि. तजम्मुल हुसैन:** महोदय, अब सब कुछ खत्म हो चुका है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जवाब दे चुके हैं।

***अध्यक्ष:** नहीं, उन्होंने उत्तर नहीं दिया है। उन्होंने सिर्फ वही संशोधन बताये हैं, जिन्हें स्वीकार करने को वे तैयार हैं।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): महोदय, मैं मसविदा समिति का ध्यान उन असुविधाओं की तरफ आकृष्ट करना चाहता हूं, जो खंड को वर्तमान रूप में स्वीकार करने से उठेंगी। अभी किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है। उप-राष्ट्रपति ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो राज-परिषद् या निम्न धारा-सभा में से किसी का सदस्य न हो। वर्तमान कानून के अन्तर्गत राज-परिषद् के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को परिषद् का सदस्य होना चाहिये। नये विधान के अनुसार उप-राष्ट्रपति परिषद् का एक अतिरिक्त सदस्य होगा, जिसे केवल मतभेद होने की अवस्था में ही मत प्रकट करने का अधिकार रहेगा। इसलिये यह विषय विचारणीय है। यह विचारणीय इसलिये है कि हम दोनों ही व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित सदस्य रखने की आशा करते हैं--सिवाय राज-परिषद् के उन दस स्थानों के, जो नामजदगी के लिये सुरक्षित कर लिये गये हैं। वह इन दस मनोनीत स्थानों में आ सकता है—बजाय इसके खण्ड में उल्लिखित स्थानों में एक की और वृद्धि की जाये।

दूसरी बात यह है कि वह निम्न धारा-सभा (प्रजा सभा) का सदस्य हो और इस अवस्था में व्यवस्था यह करनी पड़ेगी कि संघ के उप-राष्ट्रपति और उच्च धारा-सभा के अध्यक्ष चुने जाते ही वह निम्न धारा-सभा का सदस्य न रह जायेगा। मौजूदा कानून के अन्तर्गत उच्च धारा-सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष की अलग से व्यवस्था की गयी है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू पंडित ठाकुरदास भार्गव का यह संशोधन स्वीकार कर चुके हैं कि जब कभी उच्च धारा-सभा के अध्यक्ष को, जो उप-राष्ट्रपति भी है, राष्ट्रपति के स्थान पर काम करना पड़े, तो उच्च धारा सभा के लिये एक अध्यक्ष अस्थायी रूप से चुन लिया जाना चाहिये। इसके स्थान पर मेरा सुझाव यह है कि संघ के उप-राष्ट्रपति का चुनाव समाप्त होते ही राज-परिषद् के लिये एक उपाध्यक्ष का चुनाव भी हो जाना चाहिये, जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में साधारण तौर पर काम करे। महोदय, आप जानते हैं कि असेम्बली में अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष हैं। स्पीकर सभा में सदा बैठा नहीं रह सकता और इसीलिये डिप्टी स्पीकर को उनका स्थान कभी-कभी ग्रहण करना पड़ता है। इसी प्रकार भारतीय शासन-विधान कानून में उपाध्यक्ष की व्यवस्था की गयी है, जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में यह अनुपस्थिति चाहे एक दिन के ही मध्य में क्यों न हो--उसकी जगह स्थानापन्न रूप से काम करेगा। इसलिये अस्थायी अध्यक्ष रखने के स्थान पर राज-परिषद् के सदस्यों में से किसी को अध्यक्ष के स्थान पर, जो उप-राष्ट्रपति भी है, काम करने के लिये उपाध्यक्ष के रूप में चुनने की व्यवस्था होनी चाहिये।

तीसरी बात यह है कि यह उपाध्यक्ष किसी भी धारा-सभा का सदस्य हो सकता है और इस अवस्था में उपाध्यक्ष चुने जाने पर वह उस धारा-सभा का सदस्य नहीं रह जायेगा।

मैं चाहता हूं कि मसविदा समिति सभा के आगे विस्तृत बिल उपस्थित करने से पूर्व इस बात का ध्यान रखे।

जहां तक पांच वर्ष की अवधि को घटाकर 4 वर्ष की करने के संशोधन का सम्बन्ध है, उसे स्वीकार करने का मुझे कोई कारण समझ में नहीं आता। राज-परिषद् के सदस्यों का पूरा कार्यकाल छः वर्ष है और पहले दल के अवकाश ग्रहण करने के बाद यही कार्यकाल साधारण रूप से सभी सदस्यों के लिये रहेगा, तो ऐसी हालत में उपाध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष रहे या 4 वर्ष, इसका कुछ भी महत्व नहीं है––हां वह छः वर्ष से अधिक न होना चाहिये।

इसलिये यह संशोधन करने का मुझे कोई उचित कारण नहीं जान पड़ता और मेरे विचार में उसे स्वीकार करना उचित न होगा।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। दो संशोधन ऐसे हैं, जो खण्ड 6 के उपखंड (1) के विकल्प के रूप में उपस्थित किये गये हैं। इनमें एक श्री संतानम् का और दूसरा मि. नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन है। मैं पहले श्री सन्तानम् का संशोधन लेता हूं। प्रश्न यह है कि:

"खंड 6 के उपखंड (1) के लिए निम्न शब्द बदल दिये जायें:

'राष्ट्रपति का स्थान रिक्त होने और चुनाव द्वारा उसकी पूर्ति के मध्यवर्ती काल में और ऐसी अवस्था में जबकि राष्ट्रपति अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य किसी कारण से अपना कार्य करने में असमर्थ हो, उसके कार्य उप-राष्ट्रपति करेगा।'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** मि. नजीरुद्दीन अहमद और मि. पोकर साहब के संशोधनों को उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। प्रश्न यह है कि:

"खंड 6 के उपखंड (2) के स्थान पर निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'(2) उप-राष्ट्रपति उसी निर्वाचक-मण्डल द्वारा चुना जायेगा जो राष्ट्रपति के चुनाव के लिए लागू होगा और वही तरीका भी ग्रहण किया जायेगा और उप-राष्ट्रपति राज-परिषद् का अध्यक्ष भी होगा'।''

प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

"खण्ड 6 में निम्न शब्दों को उपखण्ड (3) के रूप में जोड़ दिया जाये और वर्तमान उपखण्ड (3) की संख्या उपखण्ड (4) कर दी जाये:

'(3) जिस अवधि में उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के स्थान पर कार्य करेगा उसमें राज-परिषद् चाहे तो अपने अस्थायी उपाध्यक्ष का चुनाव कर सकती है।'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न है कि:

"खण्ड 6 के उपखण्ड 3 में '5 वर्ष' शब्दों के लिये निम्न अंक और शब्द रखे जायें:

'4 वर्ष तक अथवा नये उप-राष्ट्रपति के चुनाव तक, जो भी बाद में हो, अपने पद पर काम करेगा।'"

प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

"खण्ड 6 में निम्न नया उपखण्ड (4) जोड़ दिया जाये:

'(4) खण्ड 4 की व्यवस्था आवश्यक परिवर्तनों के अनन्तर उप-राष्ट्रपति पर भी लागू होगी।'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

"उपखण्ड (3) के बाद निम्न उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'ऐसा कोई व्यक्ति उप-राष्ट्रपति नहीं चुना जायेगा, जो अपनी उम्र के 35 वर्ष पूरे न कर चुका हो।'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल है कि उपखंडों की संख्या फिर से निर्धारित करना आवश्यक हो गया है, और परिषद् द्वारा मसविदा समिति को उपखंडों की संख्या फिर से निर्धारित करने की अनुमति देनी चाहिये। अब खंड पर संशोधित रूप में मत लेना चाहता हूं। प्रश्न यह है कि खंड संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खंड 7

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** अध्यक्ष, मैं प्रस्ताव करता हूं कि खंड 7 स्वीकार कर लिया जाये। इस खंड के सम्बन्ध में मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है। किसी राज्य में संघ का प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार वास्तव में उस राज्य के प्रधान के ही हाथ में रहना चाहिये–यहां यह अधिकार संघ के प्रधान के हाथ में दिया गया है। नये राज्य की रक्षा-सेनाओं का प्रधान सेनापतित्व भी राज्य के प्रधान के जिम्मे किया गया है। उपखंड (2) (ए) में यही स्पष्ट करने की बात है।

जिन संशोधनों की सूचना दी गई है उनमें प्रायः सबका सम्बन्ध उपखंड (2) (बी) से है। इस सम्बन्ध में मुझे ज्ञात हुआ है कि सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर इस मद के सम्बन्ध में विचार स्थगित करने का प्रस्ताव स्थगित करने वाले हैं, क्योंकि इस विषय के कुछ पहलुओं की तरफ ध्यान आकृष्ट किया गया है और उन पर विचार किया जा रहा है। हमें आशा है कि यह विचार एक या दो दिन में ही समाप्त हो जायेगा और जब हम अगले सोमवार को एकत्र होंगे तो स्थिति पर विचार किया जा सकेगा।

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"7. (1) इस विधान में उल्लिखित नियमों को पूरा करते हुए संघ का शेष प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार राष्ट्रपति में निहित रहेगा।

(2) उपयुक्त नियम की व्यापकता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किये बिना–

(क) संघ की रक्षा-सेनाओं का प्रधान सेनापतित्व राष्ट्रपति में निहित रहेगा,

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

(ख) फौजदारी के न्याय सम्बन्धी अधिकार रखने वाले किसी न्यायालय द्वारा दिये गये दंड को रद्द करने या उसमें कमी करने और क्षमा करने का अधिकार भी राष्ट्रपति को रहेगा, किन्तु रद्द करने या कमी करने का यह अधिकार कानून के द्वारा अन्य अधिकारियों को भी दिया जा सकता है।"

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि उपखंड (2) (बी) का विचार स्थगित रखा जाये। मेरे विचार से इसके लिये विस्तार से कारण बताना आवश्यक नहीं है। इस खंड पर प्रान्तीय गवर्नरों, रियासतों की स्थिति आदि का ध्यान रखते हुये फिर से विचार करना आवश्यक हो गया है। यदि परिषद् विचार स्थगित रखना स्वीकार करे तो इस उपखंड पर सोमवार को विचार हो सकता है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न है कि:

इस उपखंड पर विचार स्थगित कर दिया जाये।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय श्री हुसैन इमाम:** महोदय, संशोधनों के सम्बन्ध में क्या स्थिति रहेगी? उपखंड का नया रूप उपस्थित होने पर क्या परिषद् को उसके सम्बन्ध में संशोधन पेश करने की अनुमति दी जायेगी?

***अध्यक्ष:** हां, अवश्य। जब कुछ परिवर्तनों का प्रस्ताव किया जायेगा तो संशोधनों की सूचना देने का भी अवसर दिया जायेगा।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** कार्य-विधि यह हो सकती है कि हमारी छानबीन समाप्त होने पर एक स्वीकृत संशोधन की सूचना किसी के द्वारा दे दी जायेगी और उस संशोधन की प्रतिलिपियां माननीय सदस्यों के मध्य वितरित कर दी जायेंगी और माननीय सदस्य उन संशोधनों पर अपने संशोधन पेश कर सकेंगे।

खंड 8

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** महोदय, मैं खण्ड 8 उपस्थित करता हूं:

"8. इस विधान के नियमों को पूरा करते हुए संघ के प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार का विस्तार उन विषयों तक होगा, जिनके सम्बंध में संघ पार्लियामेंट का कानून बनाने का अधिकार है और उन विषयों तक भी, जिनके सम्बंध में किसी संधि अथवा समझौते द्वारा संघ को अधिकार प्रदान किया गया है और यह अधिकार उसकी अपनी प्रतिनिधिक संस्था अथवा प्रांतों द्वारा काम में लाया जायेगा।"

इसमें सिर्फ इस साधारण सिद्धान्त का ही वर्णन किया गया है कि प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार का व्यवस्थापन अधिकार जितना ही विस्तार हो सकता है। अपवाद केवल उन विषयों के सम्बन्ध में है जिनका प्रबन्ध विशेष रूप से संधियों या समझौतों द्वारा किया गया है और इसका उल्लेख खण्ड के अन्तिम भाग में किया गया है।

(संख्या 201 और संख्या 201-ए के संशोधन उपस्थित नहीं किये गये।)

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** अध्यक्ष महोदय, मैंने खण्ड 8 के एक संशोधन की सूचना दी है, जिसका नाम खण्ड 8-ए होगा।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** महोदय, पहले खण्ड 8 परिषद् में उपस्थित होना चाहिये। उपस्थित संशोधन एक नये खण्ड 8-ए के रूप में आयेगा।

***अध्यक्षः** वास्तव में मुझे दो संशोधन की सूचना मिली है, जिनमें पहला सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का है और दूसरा श्री अनन्तशयनम् आयंगर का है और इनका उद्देश्य एक नया खण्ड जोड़ना है।

चूंकि खण्ड के सम्बन्ध में कोई भाषण नहीं देना चाहता इसलिये मैं उस पर मत लेना चाहता हूं।

खण्ड 8 स्वीकार कर लिया गया।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** अध्यक्ष महोदय, मैं खण्ड 8 में निम्न भांति संशोधन करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** यह खण्ड 8 का संशोधन नहीं है, बल्कि 8-ए के रूप में एक नया संशोधन है।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** हां महोदय, यहां मैं यह कह देना चाहता हूं कि जहां यूनियन शब्द आया है वहां मैंने उसका संघ (फेडरेशन) कर दिया है। आशा है कि परिषद् मुझे "यूनियन" की जगह संघ (फेडरेशन) शब्द को रखने की अनुमति प्रदान करेगी। यह गलती रह गयी थी। मैं निम्न संशोधन उपस्थित कर रहा हूं:

"खण्ड 8 के बाद निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'8-क. (1) संघ की सरकार किसी भी भारतीय रियासत से समझौता करके उस रियासत में व्यवस्थापक, प्रबंध सम्बन्धी अथवा न्याय सम्बंधी अधिकार ग्रहण कर सकती है, किंतु ऐसा करते समय भारतीय संघ और उसमें सम्मिलित होने वाली भारतीय रियासत के मध्य के सम्बन्धों के विषय में विधान में जो नियम बने हैं, उन्हें पूरा करना पड़ेगा।

(2) यदि यह समझौता किसी ऐसी रियासत से हुआ है, जो संघ में सम्मिलित नहीं हुई है तो उस समझौते पर संघ की पार्लियामेंट द्वारा विदेश में अधिकार चलाने से सम्बन्ध रखने वाले कानून की शर्तें लागू होंगी।

(3) यदि ऐसे किसी समझौते में कोई ऐसी बातें भी आ गयी हैं, जो किसी प्रांत और किसी रियासत के मध्य प्रांतीय विधान के खंड 8 के अनुसार होने वाले समझौते में आ चुकी हैं, तो प्रांत से होने वाले समझौते में आने वाली शर्तें रद्द समझी जायेंगी।

(4) उपखंड (1) के अनुसार समझौता हो चुकने पर समझौते के नियमों को पूरा करते हुए संघ उपयुक्त अधिकारियों द्वारा व्यवस्थापन, प्रबंध सम्बन्धी अथवा न्याय सम्बन्धी अधिकारों के अनुसार कार्रवाई कर सकता है।'"

इस खण्ड के समर्थन में आपकी अनुमति से मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। इस खण्ड का उद्देश्य इसे उस खण्ड के समकक्ष लाना है, जो यह परिषद् प्रान्तीय क्षेत्र में प्रान्तीय विधान के सम्बन्ध में पास कर चुकी है। उसके अनुसार प्रान्तों को कुछ विशेष विभागों के, जो प्रान्तीय क्षेत्र में समझौते के परिणामस्वरूप कोई रियासत हस्तांतरित कर चुकी है, प्रबन्ध का अधिकार मिल जाता है। इस खंड का उद्देश्य संघ को सर्वोपरि अधिकार प्रदान करना है। जहां तक उपखण्ड (1) का सम्बन्ध है, उसमें सिर्फ सम्मिलित होने वाली रियासतों को ही लिया गया है। ये रियासतें संघ में कुछ विशेष विषयों के लिये सम्मिलित हो सकती हैं। जहां तक अन्य विषयों का सम्बन्ध है, रियासतें संघ से कुछ खास कार्यों के लिये भी संघ से समझौता कर सकती हैं। इस खण्ड का उद्देश्य सम्मिलित होने वाली रियासतों को इस बात की सुविधा देना है कि वे ऐसे विषयों के सम्बन्ध में समझौते कर सकें, जिन्हें प्रवेश-पत्र की शर्तों में सम्मिलित न किया गया हो।

दूसरे उपखण्ड में उन रियासतों की चर्चा है, जो संघ में सम्मिलित नहीं होतीं, किन्तु फिर भी वे भारतीय संघ से समझौता करने को तैयार हों। परन्तु ऐसे समझौते के लिये उस विदेशी अधिकार-क्षेत्र-कानून की शर्तें पूरी करना आवश्यक होगा, जो धारा-सभा एक पूर्ण सत्ता सम्पन्न धारा-सभा के रूप में काम करते हुये पास करेगी। उसमें यही व्यवस्था की गयी है। यदि किसी ऐसी रियासत से समझौता हुआ है, जो संघ में सम्मिलित नहीं हुई है, तो उस समझौते के लिये संघ की पार्लियामेंट द्वारा पास किये गये विदेशी अधिकार-क्षेत्र-कानून की शर्तों का निर्वाह करना आवश्यक होगा।

तीसरे उपखण्ड का इरादा एक तरफ प्रान्तों और रियासतों तथा दूसरी तरफ संघ और रियासतों के संघर्ष से बचना है। प्रान्तीय विधान तक में व्यवस्था कर दी गई है कि उसके ऊपर संघ-सरकार का नियंत्रण रहेगा। इस उपखंड का उद्देश्य यह है कि यदि संघ और किसी एक रियासत में समझौता हुआ है और उस समझौते में वह क्षेत्र आ जाता है, जिसके सम्बन्ध में उस रियासत का प्रान्त से पहले कोई समझौता हो चुका है, तो केन्द्र और रियासत के मध्य हुये समझौते का प्रभुत्व प्रान्त और रियासत के मध्य हुये समझौते पर होना आवश्यक है।

खण्ड 8 (4) में बताया गया है कि समझौते का ठीक-ठीक प्रभाव क्या होता है। "उपखण्ड (1) के अन्तर्गत समझौता होने पर उसकी शर्तों का ध्यान रखते हुए संघ समझौते में उल्लिखित प्रबन्ध सम्बन्धी, न्याय सम्बन्धी तथा व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्य उपयुक्त अधिकारियों द्वारा कर सकता है।" यह बहुत-कुछ वैसी ही

[सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

व्यवस्था है, जैसी परिषद् प्रान्तों और रियासतों के सम्बन्ध में पहले ही स्वीकार कर चुकी है। मैं परिषद् से खण्ड 8-ए का प्रस्ताव स्वीकार करने का अनुरोध करता हूं।

***कर्नल श्री महाराज हिम्मतसिंह जी** (पश्चिमी भारत-रियासत समूह): अध्यक्ष महोदय, हमें इस संशोधन की सूचना नहीं मिली है। कृपया हमें सोमवार तक इस पर विचार करने और आवश्यक हो तो संशोधन की सूचना देने का समय दीजिये।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन सदस्यों में वितरित कर दिया गया था।

***कर्नल श्री महाराज हिम्मतसिंह जी:** यह हमारे पास नहीं भेजा गया था। मेरे अतिरिक्त अन्य कितनों ही को यह सूचना नहीं मिली है।

***माननीय श्री हुसैन इमाम:** सूचना कल सायंकाल 4 बजे मिली थी।

***अध्यक्ष:** सूचना सायंकाल 4 बजे भेजी गई थी। यदि माननीय सदस्य का सुझाव स्वीकार किया जाता है तो हमें इस पर विचार स्थगित रखना चाहिये ताकि सदस्य इस संशोधन पर सोच-विचार करके संशोधन की सूचना दे सकें। मेरे विचार से सदस्यों को संशोधनों की सूचना देने के लिये पर्याप्त समय रहना चाहिये। मेरा ख्याल है कि सब-कुछ मिलाकर इसका विचार स्थगित करना ही उचित होगा।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** महोदय, मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है।

***माननीय श्री हुसैन इमाम:** संशोधन की सूचना देने का समय प्रत्येक व्यक्ति को मिलना चाहिये।

***अध्यक्ष:** कल हमने निश्चय किया था कि अगले दिन जिन खण्डों पर विचार होना है उनके संशोधनों की सूचना एक दिन पहले सायंकाल तक मिल जानी चाहिये। यदि संशोधनों के संशोधनों की सूचना देने के लिये समय आवश्यक है तो कहा नहीं जा सकता कि यह चक्र कहां समाप्त होगा।

***माननीय श्री हुसैन इमामः** ऐसे विषयों में किया यह जाता है कि अध्यक्ष कार्य-प्रणाली के नियमों को स्थगित कर देता है और यदि उसकी राय में कोई संशोधन आवश्यक है तो उसे उपस्थित करने की अनुमति दे देता है।

***अध्यक्षः** अच्छा अब आगे बढ़ना चाहिये। हम इस विषय पर बाद में विचार करेंगे। इसी प्रकार श्री अनन्तशयनम् आयंगर का संशोधन भी रोका जा सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री टी. चनय्या** (मैसूर) एक संशोधन मेरे नाम से भी है।

***अध्यक्षः** हम सभी संशोधनों को तभी लेंगे जब खंड पर विचार होगा।

खण्ड 9

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** मैं खंड 9 उपस्थित करता हूं:

"संघ में सम्मिलित होने वाली किसी रियासत के शासक का प्रबंध सम्बंधी अधिकार, जहां तक उस अधिकार का सम्बंध संघ के विषयों से हो, उस रियासत में तब तक कायम रहेगा जब तक कि उपयुक्त संघ-अधिकारी इस सम्बंध में कोई और प्रबंध न कर ले।"

अभी संघ-विषय तथा रियासती विषय दोनों ही रियासतों के प्रबन्ध सम्बंधी अधिकार के अन्तर्गत आ जाते हैं। संघ की स्थापना होने पर जब कुछ विषय केन्द्र के जिम्मे कर दिये जाते हैं तो उनका प्रबन्ध, जो पहले से ही रियासतों के हाथ में है, उन्हीं के हाथों में तब तक बना रहने दिया जायेगा जब तक कि संघ-सत्ता उसके लिये कोई दूसरा प्रबन्ध नहीं करती। साधारण सिद्धान्त यह है, जैसा कि मैं पिछले खण्ड के विषय में कह भी चुका हूं कि संघ के प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार का विस्तार उसी सीमा तक होगा, जिस सीमा तक उसे व्यवस्थापन (कानून बनाने) का अधिकार प्राप्त है। उपस्थित खंड में भी इसी सिद्धान्त का खयाल रखा गया है। यहां तो केवल यही कहा गया है कि किसी विशेष विषय का प्रबंध अभी जहां रियासती अधिकारियों के पास है वहां उसे तब तक जारी रखा जायेगा, जब तक कि संघ-अधिकारी उस सम्बन्ध में कोई दूसरी व्यवस्था न कर लें। ऐसा करने का उद्देश्य केवल यही है कि कहीं संघ की स्थापना के समय शासन-प्रबन्ध की कोई गड़बड़ी न उठ खड़ी हो। इस सम्बन्ध में कुछ संशोधन

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

भी हैं, किन्तु मैं उनके सम्बन्ध में विस्तार से कुछ भी न कहूंगा। परन्तु एक संशोधन कई रियासतों के प्रधान मंत्रियों के नाम पर है। वह संशोधन वस्तुतः वर्तमान भारतीय शासन कानून की 125वीं धारा की पुनरावृत्ति है। मैंने उसके स्थान पर एक अन्य संशोधन की सूचना दी है और जिन प्रधान मंत्रियों ने उस संशोधन की सूचना दी है वे यदि अपने संशोधन को वापस लेना स्वीकार करें तो मैं अपना संशोधन उपस्थित कर दूंगा।

***अध्यक्षः** जहां तक मैं समझता हूं सर गोपालस्वामी, प्रधान मंत्रियों ने जिस संशोधन की सूचना दी है वह खंड 9-ए के रूप में बढ़ाया जायेगा, वह किसी खंड के बदले में नहीं रखा जायेगा। क्या आप उसी के सम्बन्ध में कह रहे हैं?

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** हां, मैंने गलती की थी। मेरे खयाल में जो आपने कहा है वही ठीक है। परन्तु मेरा कहना है कि प्रधान मंत्रियों ने अतिरिक्त शब्द जोड़ने की जो सूचना दी है उसका प्रस्ताव यदि उपस्थित न किया जाये तो मैं खंड 9 में एक ऐसा संशोधन उपस्थित करूंगा, जो मुझे आशा है कि उन्हें मान्य होगा।

***सर बी.एल. मित्तर** (बड़ौदा): सर एन. गोपालस्वामी आयंगर जो संशोधन उपस्थित करने जा रहे हैं उसके कारण हम अपने उस संशोधन को नहीं उपस्थित करना चाहते, जो हमारे नाम पर है।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** मैं प्रस्ताव करता हूं कि खण्ड 9 के अन्त मैं निम्न शब्द जोड़ दिये जायें: "उन रियासतों में जहां यह आवश्यक समझा जाये।"

इसका कुछ भी स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** अब हम अन्य संशोधनों को लेंगे। श्री चन्द्रशेखरिया!

***श्री डी.एच. चन्द्रशेखरियाः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि खण्ड 9 के स्थान पर निम्न रखा जाये:

"संघ में सम्मिलित होने वाली किसी रियासत के शासक का शासन-प्रबंध सम्बंधी अधिकार, जहां तक उस अधिकार का सम्बंध संघ के

विषयों से हो, उस रियासत में कायम रहेगा किंतु संघ के प्रधान प्रबंधक को निरीक्षण और निर्देशन का अधिकार रहेगा।"

महोदय, इस खण्ड के वर्तमान रूप द्वारा संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतों के शासकों को संघीय विषयों के सम्बन्ध में तब तक कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया है जब तक संघ इस सम्बन्ध में कोई और प्रबन्ध न कर ले। यह व्यवस्था नहीं की गई है कि यह कार्रवाई किसी संघीय अधिकारी की देखरेख या नियंत्रण में हो। संघीय विषयों के सम्बन्ध में अनियन्त्रित कार्रवाई का अधिकार देना न तो ठीक ही है और न इससे कोई सहायता ही मिल सकती है। इसलिये इस संशोधन के द्वारा मैंने प्रस्ताव किया है कि कार्रवाई करने के अधिकार को संघ के प्रधान शासन-प्रबन्ध की देखरेख और निर्देशन में लाया जाये। यह संशोधन का एक पहलू है।

दूसरा पहलू यह है कि संघीय विषयों के प्रबन्ध के लिये रियासती अधिकारियों का उपयोग केवल उसी समय तक किया जायेगा जब तक कि संघ की तरफ से कोई दूसरा प्रबन्ध नहीं किया जाता। मेरा कथन यह है कि यदि रियासती अधिकारियों का उपयोग कुछ समय के लिए किया जा सकता है तो स्थायी रूप से क्यों नहीं किया जा सकता? चूंकि रियासतों द्वारा कार्रवाई को संघ का प्रधान अपने नियंत्रण और निर्देशन में रखेगा इसलिये गलतियों की तरफ रियासती अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट किया जा सकेगा और शासन प्रबन्ध में सुधार किया जा सकेगा। जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है प्रबन्ध के लिये संघीय विषय केवल सीमित संख्या में रहेंगे। और ऐसी अवस्था में वह अतिरिक्त जिम्मेदारी उनके लिये इतनी अधिक न होगी जिसका वे भार न वहन कर सकें। इसके अलावा मैसूर और बड़ौदा जैसी बड़ी रियासतें भी हैं, जिनका शासन-प्रबन्ध आधुनिक तथा सुव्यवस्थित है और मुझे विश्वास है कि नया प्रबन्ध उनके स्तर तक न पहुंच सकेगा।

परन्तु, सर एन. गोपालस्वामी आयंगर ने प्रस्ताव किया है कि खण्ड के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें–"उन रियासतों में जहां आवश्यक समझा जाये" और यह गर विभिन्न मतों में मध्यवर्ती मार्ग का काम देगा। मेरे विचार से इस संशोधन से परिस्थिति में उन्नति नहीं हो सकेगी क्योंकि इसमें यह कहने के लिये स्थान रह जाता है कि यह प्रत्येक रियासत के लिये आवश्यक है। यदि हम वास्तव में इन शब्दों को स्वीकार करते हैं और खण्ड में प्रस्तावित संशोधन करते हैं तो

[श्री डी.एच. चन्द्रशेखरिया]

मैं पहला सुझाव तो यह उपस्थित करता हूं कि रियासतों के भीतर जो संघीय शासन-प्रबन्ध हो उसके नियंत्रण तथा निर्देशन की व्यवस्था कर दी जाये और दूसरा यह कि रियासती अधिकारियों को संघीय विषयों का शासन-प्रबन्ध स्थायी आधार पर करने दिया जाये। मैं निवेदन करता हूं कि परिषद् मेरे संशोधन पर विचार करके उसे स्वीकार करेगी।

***श्री हिम्मतसिंह के. माहेश्वरी** (सिक्किम और कूच बिहार : ग्रुप): अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम जो संशोधन है वह साधारण ही है। इसके द्वारा खण्ड 9 के "उपयुक्त संघ-अधिकारी" शब्दों के स्थान पर "संघ के किसी कानून द्वारा" शब्द रखने का प्रस्ताव किया गया है। यदि प्रस्ताव स्वीकार किया गया तो खंड का निम्न रूप हो जायेगा:

> **"विधान में इसके विपरीत चाहे जो हो, संघ में सम्मिलित होने वाली किसी रियासत के शासक का प्रबंध सम्बन्धी अधिकार, जहां तक उस अधिकार का सम्बन्ध संघ के विषयों से हो जिनके सम्बन्ध में उस रियासत के लिये संघ व्यवस्थापिका सभा को कानून बनाने का अधिकार है, कायम रहेगा सिवाय उस अवस्था के जबकि संघ का प्रबंध सम्बंधी अधिकार रियासत में इस प्रकार काम में आने को हो कि संघीय कानून के द्वारा शासक के प्रबंध सम्बंधी अधिकार का निराकरण कर दिया गया हो।"**

महोदय, "अधिकारी" शब्द स्पष्ट नहीं है। इसका मतलब संघ-सरकार के अंडर सेक्रेटरी से हो सकता है। इसलिये मैं परिषद् से ऐसी व्यवस्था स्वीकार करने का अनुरोध करता हूं, जिसके द्वारा जब कभी भी संघ के प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार से किसी रियासत में काम लिया जाने वाला हो तो ऐसा किसी संघ-अधिकारी के आदेश द्वारा न होकर संघ-कानून के द्वारा होना चाहिये। महोदय, कदाचित इस संशोधन की आवश्यकता ही न पड़े, क्योंकि खण्ड का मसविदा बनाने वाले अन्त में स्वयं ही शब्दों को अधिक स्पष्ट कर दें। मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता। यदि मसविदा-समिति इस विषय पर विचार कर ले तो मेरे उद्देश्य की सिद्धि हो जायेगी।

(सर्वश्री किशोरीमोहन त्रिपाठी, बी. एम. गुप्ते, विश्वनाथ दास, एच. आर. गुरुव रेड्डी, जयनारायण व्यास, एस. वी. कृष्णमूर्ति राव और के. चेगलारैया रेड्डी ने संख्या 204 से 210 तक अपने संशोधन उपस्थित नहीं किये।)

***अध्यक्षः** मेरे विचार में यही संशोधन हैं, जिनकी मुझे सूचना दी गयी है। अब खण्ड तथा संशोधनों पर बहस चल सकती है। क्या कोई सदस्य खण्ड या संशोधन पर कुछ कहना चाहते हैं?

श्री महावीर त्यागीः (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान् जी, कांस्टीट्यूशन का यह हिस्सा बहुत जरूरी हो जाता है, इसलिये कि इसका ताल्लुक हिन्दोस्तान की बहुत बड़ी आबादी से जो रियासतों में रहती है, पड़ेगा। आजकल रियासतों को बहुत काफी अधिकार अपने घरेलू इन्तजाम के हैं पर उन अधिकारों के बाद हर रियासत में एक रेजीडेण्ट भी अंग्रेजों का रहता है। वह रेजीडेण्ट राजाओं के इन अधिकारों पर कुछ थोड़ा-सा चैक रखता है और कुछ अपना हाथ रखता है और वह समय-समय पर प्रजा के अधिकारों की रक्षा भी करता आया है। यदि आज उस रेजीडेण्ट के हट जाने के बाद प्रजा के अधिकारों की रक्षा का कोई साफ-साफ रास्ता यह कान्स्टीट्युएंट असेम्बली नहीं निकाल सकी, तो मेरा यह कहना है कि हमारा कान्स्टीट्यूशन बनाने का जो काम है वह नाकामयाब माना जायेगा। इस कांस्टीट्युएंट असेम्बली का यह फर्ज हो जाता है कि जब रियासत और रियासतों की प्रजा हमारी इस यूनियन में शामिल होती है तो उस प्रजा के सुख, उस प्रजा के अधिकारों की रक्षा करना भी हमारा फर्ज है। मैं आज आपका थोड़ा-सा समय इसलिये लेने हाजिर हुआ कि कहीं रियासत में रहने वाले प्रजा के लोग यह न कहें कि रियासतों को अपने साथ शामिल करने के लालच में सारी असेम्बली खामोश बैठी रही जबकि उस प्रजा के अधिकारों की रक्षा का सवाल उपस्थित हुआ तो मैं इस समय कोई तरमीम करके इस कार्यवाही को रोकना नहीं चाहता, क्योंकि जो भी कानून इस समय बन रहा है या शर्तें हो रही हैं वह बाद में आखिरी शक्ल अख्तियार करके इस असेम्बली में आयेंगी। उस वक्त हमें आखिरी मौका होगा उनकी परख करने का और उनको बदलने का। पर मैं यह कहना चाहता हूं कि इस समय जो अधिकार रियासतों के हैं उन पर रेजीडेण्ट का एक चैक है, रेजीडेण्ट का एक कण्ट्रोल है, उनके हट जाने के बाद उनके ऊपर क्या चैक रहेगा, क्या कण्ट्रोल रहेगा? इसको वह कमेटी जो रियासतों के साथ बातचीत कर रही है, इस हाउस के सामने साफ-साफ खुले तौर से या तो इस समय या किसी और उचित समय रख दे क्योंकि जो अधिकार राजाओं के आज हैं वह उतने ही हैं जितने यूनियन के होंगे फिर उतने अधिकारों से भी और ज्यादा

[श्री महावीर त्यागी]

अधिकार जो उनके नहीं थे वह भी आज इसे मिलते हैं। इसका नतीजा यह होगा कि डेस्पाटिक रियासतें जो खुदमुख्तार हैं उन पर कोई चैक नहीं रहेगा। बहुत-सी रियासतें ऐसी हैं जिनके यहां कोई लेजिस्लेचर नहीं हैं। ऐसी हालत में अगर मनमाने अधिकार उसके बने रहे तो वहा रियासतें तो बड़े फायदे में रहीं, यूनियन में आने से। आज रियासतों को यूनियन में लाने के लिये हम यह कीमत अदा करते हैं। अगर उनके मनमाने अधिकार उनके साथ बने रहने देते हैं तो हर-एक राजा को हमारी यूनियन में आने से विशेष आराम रहेगा क्योंकि आज तक प्रजा कांग्रेस और दूसरी संस्थाओं की सहायता लेकर उनके विरोध में खड़ी हो सकती थी, अब वह भी बन्द हो जायेगी। इसके बाद तो राजा लोग अपने अधिकार और भी मनमाने तरीके से प्रयोग में लायेंगे। इसलिये बड़ी जरूरत है कि जब हम यह पास करें कि जो अधिकार इस यूनियन के हैं उसी प्रकार के अधिकार या जो अधिकार आज तक प्राप्त हैं वही सब अधिकार चलते रहेंगे। यह तो ठीक है इसको ऐसे ही पास भी कर दिया जाये, परन्तु उसके ऊपर चैक, उसके ऊपर कण्ट्रोल इस बात का कि नाजायज तरीके से वह अधिकार इस्तेमाल न हों इसका भी कोई प्रबन्ध हमारे इस विधान में होना चाहिये। जिस वक्त इसी फेडरेशन का गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट सन् 1935 बन रहा था उसके अन्दर भी रियासतों के सम्बन्ध में इसी विषय की चर्चा की गई। वहां साफ-साफ यह कहा गया है कि जहां-जहां भी किसी रियासत का कोई कानून फेडरेशन के कानून के विरोध में जायेगा या उसके साथ नहीं मिलेगा वहां रियासत का कानून रद्दी माना जायेगा और फेडरेशन का कानून और नियम लागू होगा। इस वक्त यह दिक्कत है कि दो डोमीनियन बन गई हैं, एक पाकिस्तान और दूसरी हिन्दुस्तान। एक को फिक्र है कि ज्यादा रियासतें हमारे अन्दर आ जायें। दूसरे को फिक्र है कि ज्यादा हमारे अन्दर चली आयें। और इस तरीके से रियासतों की कीमत बढ़ रही है। उनका ज्यादा दाम लग जाने से उनको असाधारण सहूलियतें दी जा रही हैं, इसलिये कि वह हमारे अन्दर आ जायें। मेरे ख्याल से बहुत ज्यादा कीमत देकर उनका खरीदना ठीक नहीं है। अगर वह हमारी यूनियन के लिये अपने एक भी अधिकार को कम नहीं करते हैं तो यहां आने में उनको तो हमारी फौज की सहायता मिलती है और हमको केवल यह लाभ होता है कि हमारे परिवार के मेम्बरों की तादाद बढ़ती है। हर रियासत को हमारी तलवार की रक्षा मिलती है। हमारे देशभर की

इतनी बड़ी सहायता उसे मिलती है पर उस सहायता के बदले वह अपने कितने अधिकार हमको देने को तैयार है, यह बात भी हमारे सामने आनी चाहिये। इसलिये रियासतों के साथ जो यूनियन की बातचीत हो रही है वह बातचीत साफ-साफ तरीके से इस हाउस के सामने बहस में आ जानी चाहिये। और इसे जानने के बाद हमें तय करना चाहिये कि हम रियासतों के कितने-कितने अधिकार उनके पास छोड़ेंगे और कितना-कितना कण्ट्रोल हम उन रियासतों पर रखेंगे। यूनियन का जैसा आपके सामने यह क्लाज रखा गया है उसमें रियासतों को अधिकार ग्राण्ट किये गये हैं, लेकिन इसके साथ-साथ यह जिक्र नहीं आया कि रियासतों पर यूनियन के अधिकार क्या होंगे? मैं इस प्रस्ताव में रुकावट नहीं डालना चाहता और मेरा ऐसा भी खयाल है कि ऐसा रिवाज भी डाल दें कि यह हो जाये कि जब मेम्बर भाषण करे तो उनकी जिम्मेदारी ऐसी न हो कि वह अवश्य ही किसी प्रश्न की ताईद या मुखालिफत करें जब कि जरूरी मसला पेश हो तो मेम्बर को हक़ हो कि बिना ताईद या मुखालिफत किये वह इस हाउस के सामने रख दे, अपने विचार पेश कर दे। ताकि यह रेकार्ड हो कि हाउस में इस किस्म का खयाल भी था। मैं सिर्फ इसलिये यहां आया हूं कि रेकार्ड में यह चीज रहे और जो रियासतों से बातचीत करते हैं उनके सामने भी ऐसा खयाल आ जाये कि कुछ लोग ऐसे हैं जो यह चाहते हैं। मैं चाहता हूं कि मेरे यहां आने से यह बात रोशनी में आ जाये कि रियासतों की लिबर्टीज़ क्या हैं और उनको हम क्या अधिकार देते हैं। मेरी खास मांग यह है कि किसी रियासत को जो अधिकार आज तक थे उससे ज्यादा अधिकार हमारे यहां आने से उन्हें न मिल जायें। जो अब तक थे वह पर्याप्त थे। हमारे यहां उनके आने से रेजीडेण्ट भी हट जायेंगे तो बाजी-बाजी रियासतें बगैर लगाम की हो जायेंगी। इसलिये मेरा कहना है कि बिना किसी रियासत का अपमान किये, बिना किसी प्रकार का दोष लगाये मैं यह कहना चाहता हूं कि जब रियासतें हमारे परिवार में आती हैं तो हमारे परिवार के जो डिमोक्रेसी के नियम हैं उन्हें उनका पालन करना अनिवार्य होगा। डेस्पाटिक रियासतों की हमारे इस परिवार में कोई जगह नहीं है। भले ही आज किन्ही लीडरों के कहने से उन्हें ऐसा मालूम पड़े कि वह आराम से रहेंगी। मैं कह देना चाहता हूं उन रियासतों से जो खुशी से आती हैं कि भले ही उनकी शर्तें मंजूर हो जा रही हों, यहां आने में उनका डेस्पाटिक तरीका खतरे में है। यह असेम्बली और हिन्दुस्तान बहुत जल्द डेस्पाटिक को खत्म कर देगी, इस बात को सुनने के बाद रियासतें यहां

[श्री महावीर त्यागी]

आयें। यह आज आम हिन्दुस्तानी की मांग है और इसलिये आज अगर यह असेम्बली डेस्पाटिज्म को खत्म नहीं कर सकती किन्हीं वजूहात से, तो इस असेम्बली के खत्म होने के बाद नेशन दूसरी कान्स्टीट्युऐंट असेम्बली बुलायेगी जोकि न केवल इकानामिक मामलों को बल्कि पोलिटिकल मामलों को भी हल करेगी और हमबार करेगी। वह इन्कलाबी असेम्बली कोई डेस्पाटिज्म का इशारा या निशान भी हिन्दुस्तान में नहीं रहने देगी। जो आजकल के जमाने में हिन्दुस्तान में डेस्पाटिज्म की लानत और काला धब्बा है, हमारी यूनियन ज्यादा दिनों तक उसे अपने माथे पर नहीं लगाये रहेगी। यही मेरा कहना है।

***माननीय श्री हुसैन इमाम:** अध्यक्ष महोदय, पिछले वक्ता ने जो यह कहा है कि संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतों में एक सीमा तक लोकतन्त्रवाद अवश्य होना चाहिए, यह एक ऐसी बात है जिसके सम्बन्ध में इस परिषद् में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए। कुछ ऐसे स्तर हैं और ऐसी कार्रवाइयां हैं, जिन्हें आवश्यकता की दृष्टि से न्यूनतम माना जाता है, जीवन के लिए जरूरी माना जाता है और इस युग में किसी भी व्यक्ति के लिए निरंकुश शासन के ईश्वर प्रदत्त अधिकार का दावा बिल्कुल गलत है। मैं उन लोगों में हूं, जो संयत व्यवहार तथा बातचीत करके समझौता करने को अच्छा समझते हैं। परन्तु एक सीमा ऐसी अवश्य है, जिसके परे आप इन प्रक्रियाओं को नहीं ले जा सकते। कुछ आधारभूत सिद्धांत ऐसे हैं, जिन्हें आपको मानना ही पड़ेगा। चूंकि एक विदेशी सरकार ने 560 रियासतों को स्वीकार किया है इसलिए यह आवश्यक नहीं हो जाता कि यह विधान-परिषद् भी इनका पृथक अस्तित्व स्वीकार करे। आज संसार में यह साधारण सिद्धांत मान लिया गया है कि जीवन-संघर्ष में ये छोटी रियासतें कायम नहीं रह सकतीं। आप औद्योगीकरण तथा घरेलू उद्योग को ही देखिए। दिन-प्रति-दिन घरेलू उद्योग की अवनति हो रही है। हम उसकी रक्षा करके उसे ऊपर इसलिये उठाते हैं कि श्रमजीवी को उससे मिलों की अपेक्षा अधिक लाभ है। इसी प्रकार यदि साधारण व्यक्ति के हित में 560 रियासतों को बनाये रखना होता तो मैं निश्चय ही उनका समर्थन करता। परन्तु इनमें से कुछ रियासतें तो इतनी छोटी हैं कि स्वयं उन्हीं ने मिलकर अपने को बड़ी इकाइयों का रूप दिया है। यह प्रगति उचित दिशा में हुई है और यदि इस गति को प्रोत्साहन दिया जाये—जैसा कि होना चाहिए—तो उनका अस्तित्व आज भी बनाये रखा जा सकता है। परन्तु यदि पृथक व्यक्तित्व रखने की चेष्टा की गई और रियासतों द्वारा अपने संघ बनाकर साधारण जनता को समान विशेषाधिकार तथा समान लाभ प्रदान करने की जो नयी लहर चली

है उसे आगे नहीं बढ़ाया गया तो रियासतों का अस्तित्व खतरे में पड़ने की आशंका है। मैं पिछले वक्ता की इस अपील का समर्थन करता हूं कि यह परिषद् तथा बातचीत चलाने वाले सज्जन इस बात का ध्यान रखें कि रियासतों में साधारण व्यक्ति के उन अधिकारों की रक्षा होनी चाहिये, जो हमें ब्रिटिश भारत के नागरिकों के अधिकारों के ही समान प्रिय हैं *(वाह, खूब)*। प्रान्तों के नागरिकों के हितों की रक्षा के लिये हम जितनी लगन तथा सावधानी से काम ले रहे हैं उसी लगन तथा सावधानी का परिचय हमें इस विषय में भी देना चाहिये। लोकतंत्रवाद का एक न्यूनतम स्तर होना चाहिए और नागरिकता के न्यूनतम अधिकार होने चाहियें, जिनसे भारतीय महाद्वीप में किसी को वंचित न रहना चाहिए। रियासतें–चाहे छोटी हों या बड़ी–उन सभी को उन्नति की चेष्टा करनी चाहिये और यदि उन्नति नहीं हो सकती तो हम अपनी जिम्मेदारी पूरी करने में असफल रह जायेंगे। यदि हम इकाइयों के बहुत बड़े भाग को उसी पतित अवस्था में रहने देते हैं जिसमें वे अंग्रेजों के जाने से पहले थीं तो ऐसी आज़ादी की क्या कीमत है? इसलिये मैं अपील का समर्थन करता हूं और आशा करता हूं कि उसका कुछ परिणाम अवश्य निकलेगा।

श्री जयनारायण व्यास (जोधपुर): प्रेसीडेण्ट साहब, हमारे सामने इस समय रियासतों का सवाल दरपेश नहीं है। हमारे सामने सवाल यह है कि सेन्टर के जो सब्जेक्ट्स हैं उन सब्जेक्ट्स के ऊपर आथोरिटी एक्सरसाइज करने के राजाओं के अधिकारों के ऊपर गौर करें। इसलिये मैं इस सवाल से आगे बहुत लम्बे-चौड़े सर्किल में अपने को नहीं डालना चाहता हूं न हाउस को डालना चाहता हूं।

यह बात ठीक है कि अभी जो शक्तियां, जो सत्ता राजाओं या स्टेट गवर्नमेंट के हाथ में नहीं है वह सत्ता अब उनके हाथ में चली जायेगी। लेकिन इसके साथ-साथ अगर हम उन शब्दों को देखें तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जिनके हाथ में शक्ति थी उन्हें वह रखने दी जायेगी; इससे ज्यादा नहीं होगा, जब तक दूसरी व्यवस्था न्याय के द्वारा न हो जाये।

यह सब होते हुये भी चूंकि हमारे फेडरल सब्जेक्ट्स बहुत हैं और बहुत तरह के हैं, इसलिये उनका दुरुपयोग होने की भी किसी-किसी जगह आशंका हो सकती है। लेकिन जब हम सब एक जगह आते हैं तो यह आशा करनी चाहिये बल्कि अपील करनी चाहिये कि रियासतें भी अब हमारी लाइन से आने की कोशिश करें। जिस जगह प्रान्तों के लोग हैं, उस जगह वह भी आयें और वह सत्ता जो उन्हें सेन्टर की तरफ से दी जा रही है, उस सत्ता का दुरुपयोग न करें। बल्कि इस तरह से उपयोग करें जिस तरह से प्राविन्सेज में हो रहा है। ऐसी हालत में मैं समझता हूं कि जहां तक ऐसे सेक्शन या क्लाज से ताल्लुक है उसका विरोध

[श्री जयनारायण व्यास]

करने की हमें कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। लेकिन त्यागी जी ने अभी हमारे सामने रियासतों के जनरल सवाल पर बहुत-सी बातें कही हैं। मैं एक रियासत की प्रजा हूं और प्रजा का प्रतिनिधि हूं। मैं मानता हूं कि प्रजा के प्रतिनिधियों की हैसियत अभी वह नहीं है जो मिनिस्टीरियल रिप्रेजेन्टेटिव्ज़ की है। वह लोग बातचीत करते हैं तो गवर्नमेंट की तरफ से बातचीत करते हैं। हम अभी ऐसी बातचीत करने की हैसियत में नहीं आये हैं। यह एक ऐसी पोजीशन है जिसके लिये हम भी दुखी हैं। लेकिन इसके यह माने नहीं हैं कि हम मायूस हो गये हैं। यह नामुमकिन हो गया है कि हम इस स्थिति में बहुत दिनों तक न पहुंच सकें। मुझे आशा है, मैं उम्मीद करता हूं कि हमारा सेण्टर भी राजाओं, मिनिस्टर्स और स्टेट गवर्नमेण्ट्स को प्रभावित करेगा, उनके ऊपर प्रभाव डालेगा और यह देखेगा कि हम अन्दरूनी मामलों में बराबरी की हैसियत हासिल करें और अगर ऐसा न भी हो, कोई टेकनिकल बात ऐसी हो, कानूनी पेच आ जाता हो तो हम खुद उम्मीद करते हैं और हम खुद कोशिश करेंगे कि बातचीत के जरिये मामलों को ठीक करें। अगर राजाओं से बातचीत करने से मामले ठीक न होंगे तो 15 अगस्त के बाद राजा एक तरफ रहेंगे और दूसरी तरफ प्रजा रहेगी। प्रजा में वह शक्ति है कि वह अपना फैसला आप कर लेगी। हमारे प्रति जो सहानुभूति प्रकट की गई है मैं उसके लिये धन्यवाद देता हूं। लेकिन साथ ही साथ मैं यह कहना चाहता हूँ कि जहां तक फेडरल सब्जेक्ट्स का ताल्लुक है इस पर उनका ज्यादा असर नहीं पड़ेगा। उसका असर सेण्टर पर पड़ेगा। वह अपने नफा-नुकसान को सोचेगा। ऐसी हम आशा करते हैं। मैं जो मूल प्रस्ताव है उसका समर्थन करता हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): अध्यक्ष महोदय, मैंने एक संशोधन उपस्थित किया था कि इन विषयों में रियासती प्रजा के प्रतिनिधियों को कुछ कहने का अवसर मिले, किन्तु मैंने उस संशोधन को वापस ले लिया, क्योंकि रियासतों के मंत्रियों ने सर एन. गोपालस्वामी आयंगर का एक संशोधन स्वीकार कर लिया। इसके द्वारा मैं रियासतों में एक नये युग का आविर्भाव देख रहा हूं। मुझे आशा है कि मंत्रियों ने इस संशोधन को उसकी समस्त सम्भावनाओं के साथ ही स्वीकार किया है। रियासती प्रजा के प्रतिनिधि—हम लोग—बड़ी नाजुक स्थिति में हैं। एक तरफ हम ऐसा कोई दृष्टिकोण ग्रहण नहीं करना चाहते, जिससे भारतीय संघ की स्थिति असुविधाजनक हो। इस समय एकता हमारी सबसे पहली आवश्यकता है। दूसरी तरफ हमें रियासती प्रजा के हितों की भी रक्षा करनी है। इसी दृष्टिकोण के कारण हमने सर एन. गोपालस्वामी आयंगर का संशोधन स्वीकार किया है।

महोदय, हमारा विश्वास है कि इस संशोधन की स्वीकृति के परिणामस्वरूप रियासतों में लोकतंत्रवादी शासन का न्यूनतम स्तर कायम हो जायेगा, क्योंकि संघ द्वारा इस संशोधन को स्वीकार करने का मतलब यह हुआ कि संघ परिषद् के प्रतिनिधियों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होगा, नागरिकता के अधिकारों को स्वीकार कर लिया जायेगा और मौलिक अधिकार दे दिये जायेंगे। निश्चय ही इन आधारभूत सिद्धान्तों की स्वीकृति का प्रभाव रियासतों के शासन-प्रबन्ध पर पड़ेगा। मुझे आशा है कि शीघ्र ही मंत्रिगण, जिनके कंधों पर भारी जिम्मेदारी है, केवल राजाओं के प्रति ही नहीं बल्कि संघ तथा रियासती प्रजा के प्रति भी अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे और इस बात का प्रयत्न करेंगे कि रियासतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जाये। इस आशा से मैं प्रस्ताव का सशोधित रूप में समर्थन करता हूं।

***दीवान बहादुर सर ए. रामास्वामी मुदालियर** (मैसूर): अध्यक्ष महोदय, इस महान् परिषद् के समक्ष इस महत्वपूर्ण विषय पर मुझे कुछ ही शब्द कहने हैं। रियासतों के कुछ प्रतिनिधियों ने—यहां मैं प्रतिनिधियों शब्द का प्रयोग कुछ हिचकिचाहट से कर रहा हूं, क्योंकि मेरा मतलब रियासतों के सरकारी मंत्रियों से है—एक संशोधन की सूचना दी है, जिसके द्वारा उन्होंने भारतीय शासन कानून के खण्ड 125 की पुनरावृत्ति करने की चेष्टा की है। उस कानून में सुझाव उपस्थित किया गया था कि संघ के प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकारों को रियासतें और उनके शासक अपने कर्मचारियों द्वारा अमल में लायेंगे और संघ को निरीक्षण करने के इस अधिकार से संतुष्ट होना पड़ेगा कि उपर्युक्त अधिकार को ठीक तरह से अमल में लाया जाता है या नहीं। ऐसी कितनी ही रियासतें हैं, जहां संघ अथवा भारत सरकार की तरफ से जो भी कोई कार्रवाई होनी होती है, वह रियासती सरकारों तथा रियासती कार्रवाई द्वारा होती है। उन वर्षों में, जबकि भारतीय शासन-कानून पर विभिन्न गोलमेज सम्मेलनों में विचार हो रहा था, यह स्पष्ट कर दिया गया था कि संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतों को हस्तान्तरित विषयों के सम्बन्ध में संघ व्यवस्थापिका परिषद् द्वारा कानून पास करने पर कोई आपत्ति नहीं होगी, किन्तु उन विषयों में शासन-प्रबन्ध का अधिकार अवश्य रियासतों के कर्मचारियों के हाथ में रहना चाहिये। दूसरे शब्दों में संघ को व्यवस्थापन सम्बन्धी अधिकार तो रहेगा, किन्तु रियासतों द्वारा हस्तांतरित विषयों के शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में प्रबन्ध तथा कार्य सम्बन्धी अधिकार अब भी रियासतों के जिम्मे रहेगा। यह स्थिति 1930 तक थी। मध्यवर्ती काल में कुछ रियासतों में घटनाचक्र वेग से घूम गया

[दीवान बहादुर सर ए. रामास्वामी मुदालियर]

है और इस बात के लक्षण दिखाई देने लगे हैं कि कितनी ही रियासतों में वहां के शासन-प्रबन्ध में प्रजा को हिस्सा देने की दिशा में और भी प्रगति होने वाली हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि घटनाचक्र की प्रगति, लोकमत के झुकाव, स्वयं रियासतों की जागृति और रियासतों के संघ में सम्मिलित होकर उसकी धारा-सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने की सम्भावना—इन सभी तथ्यों के कारण रियासतों के शासन-प्रबन्ध में प्रजा के हिस्सा बंटाने की प्रक्रिया और प्रगति में बहुत तेजी आ जायेगी। मैं किसी विशेष रियासत का हवाला नहीं देना चाहता, किन्तु मेरे मन में कुछ ऐसी रियासतों का उदाहरण था, जो अपनी प्रजा को इतना अधिकार दे देंगी कि प्रजा को इस सम्बन्ध में कुछ भी शिकायत न रह जायेगी। यहां तक कि जिन लोगों ने 1930-31 के गोलमेज सम्मेलनों में रियासतों का प्रतिनिधित्व किया था उनका भी यही मत था कि व्यवस्थापन का अधिकार तो बिना किसी हिचकिचाहट के संघ-पार्लियामेंट को दिया जा सकता है किन्तु शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार तो रियासतों में ही रहना चाहिये और उसे रियासती अधिकारियों द्वारा अमल में लाना चाहिए। मैं खयाल कर सकता हूं—और यह प्रस्ताव मैं किसी नौकरशाही या अलोकतंत्री शासक की तरफ से नहीं रख रहा बल्कि यह तो एक ऐसा प्रस्ताव है जो स्वयं जनता की तरफ से ही रखा जा सकता है कि इन रियासतों में शासन-प्रबन्ध का अधिकार रियासती अधिकारियों या अफसरों के पास ही रहना चाहिये। यदि संघ अपने अफसरों के द्वारा शासन-प्रबन्ध रियासतों पर लादता है तो हानि उस प्रजा की ही होती है, जिसके प्रतिनिधियों के कंधों पर आगे से रियासत के शासन-प्रबंध का भार रहेगा। इसलिये यदि संघ किसी रियासत के शासन-प्रबन्ध में अपने अधिकारियों द्वारा हस्तक्षेप करता है तो मेरा तो खयाल है कि इससे शासकों की कुछ भी हानि नहीं हुई, इससे हानि उन लोकप्रिय प्रतिनिधियों की होगी, जो शासन-प्रबन्ध में प्रजा के हिस्सा मिलने के कारण यह हानि उठायेंगे और वही रियासत में अपने अधिकार द्वारा काम लेने से वंचित रह जायेंगे। कहा जा सकता है कि एक सीमा तक प्रान्तों में भी संघ के अधिकारी हस्तक्षेप करते हैं। परन्तु मेरा विश्वास है कि यूनियन कांस्टिट्यूशन कमेटी तथा जिन लोगों ने इस कार्यवाही में भाग लिया है वे अनुभव करते हैं कि प्रान्तों और रियासतों में एक आधारभूत भेद है। मैं नहीं कह सकता कि प्रान्तों में संघ के अधिकारों के विषय में जो निश्चय किये गये हैं उनके सम्बन्ध में प्रान्तों के लोग कहां तक खुश हैं। अभी इस परिषद् को प्रान्तीय तथा संयुक्त विषयों की सूची पर विचार करना शेष है। इस परीक्षण का क्या परिणाम होगा, यह भी अभी मैं नहीं बता

सकता। परन्तु महोदय, मेरा सम्बन्ध रियासतों से सदा से नहीं रहा है–यह नया सम्बन्ध कुछ ही समय पहले स्थापित हुआ है। मेरे सार्वजनिक जीवन के 30 वर्ष उन प्रदेशों में बीते हैं, जिन्हें 15 अगस्त से पूर्व ब्रिटिश भारतीय प्रान्त कहा जाता रहा है। इस दृष्टि से मैं यह विचार प्रकट कर सकता हूं कि जिस प्रान्तीय स्वायत्त शासन के लिये हम कितने ही दशकों से आन्दोलन करते रहे हैं, वह एक वास्तविक वस्तु होनी चाहिये। प्रान्त आसानी से इस बात को नहीं मान सकते कि मजबूत केन्द्रीय सरकार का मतलब यह हो कि केन्द्रीय सरकार की अधीनता में बहुत से विषयों का शासन-प्रबन्ध रहे। मेरे विचार से मजबूत केन्द्रीय सरकार का यह मतलब नहीं होना चाहिये। सरकार को केन्द्र में किस उद्देश्य से मजबूत होना चाहिये। यदि इस स्थिति का स्पष्टता से विश्लेषण किया जाये तो आप इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि कुछ विषयों तथा कुछ अधिकारों की दृष्टि से संघ-सरकार के हाथ में काफी शक्ति रहनी चाहिये, किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि पेटेंट या कापीराइट का अधिकार केन्द्र को देने से–यहां केवल इसी विषय को लीजिये–मजबूत केन्द्रीय सरकार की स्थापना हो गई। मजबूत सरकार अन्य कारणों से भी वांछनीय हो सकती है। केन्द्रीय सरकार में मजबूती सहयोग तथा एकीकरण द्वारा आ सकती है–इस विचार द्वारा आ सकती है कि केन्द्र में जो शासन-व्यवस्था कायम की जा रही है उसके हाथ में यदि शक्ति नहीं तो कम से कम परामर्श द्वारा एकीकरण करने की योग्यता तो है। हम मजबूत केन्द्रीय सरकार की कामना तो करते हैं, किन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिये कि शक्ति अधिकार-क्षेत्र के विस्तार में नहीं है–इसमें नहीं है कि केन्द्रीय सरकार की अधीनता में बहुत से विषय आ गये हैं। इसके विपरीत मेरा विचार तो यह है कि आप संघ की अधीनता में जितने ही विषय लाते हैं उतना ही आप उसे कमजोर बनाते हैं। इसलिये समय आने पर मैं तो प्रान्तों की तरफ से–अपने इस नये अवतार को भूल कर–इस बात पर जोर दूंगा कि केन्द्रीय सरकार की मजबूती के साथ ही साथ प्रान्तीय सरकारों के हाथ में व्यापक से व्यापक अधिकार रहने चाहियें *(वाह, खूब)*। ऐसे अवसर आ सकते हैं, जब मुझे इस बात पर कोई आपत्ति न रह जायेगी कि संघ-सरकार अपने क्षेत्र पर पूरा अधिकार कर ले। संकटकाल की घोषणा होने या प्रमाणित हो जाने पर भारतीय शासन कानून के अनुसार लगे प्रतिबन्ध भी हटाये जा सकते हैं और केन्द्रीय सरकार सभी अधिकार ग्रहण कर सकती है, किन्तु साधारण स्थिति में और दिन प्रतिदिन के शासन में और संकटकाल के अभाव में मेरी विनम्र सम्मति से प्रान्तों को अधिक से अधिक और व्यापक अधिकार होने चाहियें। यदि इस तथ्य को स्वीकार कर लिया जाये तो अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से रियासतों

[दीवान बहादुर सर ए. रामास्वामी मुदालियर]

को तो और भी अधिक विस्तृत अधिकार होने चाहियें और जिन विषयों का हस्तांतरण रियासतों की तरफ से हुआ है उनके अतिरिक्त रियासतों को अवशिष्ट विषयों का प्रबन्ध करने के लिये मुक्त छोड़ देना चाहिये। मेरा खयाल है कि कुछ क्षेत्रों और कुछ रियासतों में उन विषयों के शासन-प्रबन्ध में कठिनाई उठे। मेरे माननीय मित्र माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर ने अपने संशोधन द्वारा ऐसी परिस्थिति से मुकाबला करने का उपाय किया है। ऐसा हो सकता है। इसी कारण हमने अपने संशोधन पर, जो इस परिषद् के सामने उपस्थित है, अधिक जोर नहीं दिया है। परन्तु ऐसे अपवादों को छोड़कर, साधारण नियम तो यही होना चाहिये कि जो भी रियासतें शासन-प्रबन्ध करने में समर्थ हों—चाहे उनमें शासन-प्रबन्ध करने वाला जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि हो अथवा नहीं, जिसे उचित सिद्धांतों पर शासन करना आता हो—ऐसी रियासतों के शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। मेरे खयाल में कम से कम कुछ रियासतें तो शासन-प्रबन्ध का ऐसा लेखा दिखा सकती हैं, जो (यहां मैं वह कहने का साहस नहीं करता, जो कहना चाहता हूं, क्योंकि यहां इतने प्रान्तीय प्रतिनिधि तथा प्रान्तीय मंत्री उपस्थित हैं) कम से कम प्रान्तों की तुलना में कम उत्तम नहीं रहा है। ऐसा लेखा रहने के कारण मैं यह कहने का साहस करता हूं और मेरे विचार में इस परिषद् में उसे सभी स्वीकार करेंगे कि ऐसी रियासतों में जहां कि शासन-व्यवस्था उपयुक्त होने या न होने का प्रश्न ही नहीं उठता, शासन-प्रबन्ध उस रियासत का अपना ही रहेगा। इसलिये मैं स्थिति का स्पष्टीकरण करना चाहता हूं कि सर एन. गोपालस्वामी आयंगर का संशोधन स्वीकार करते समय हम इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का त्याग नहीं कर रहे हैं कि साधारण रूप से यही नियम होगा कि रियासतें अपना शासन-प्रबन्ध रखें और अपवाद केवल विशेष अवस्था में ही किये जायेंगे।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** इस प्रस्ताव पर भाषण करने का मेरा कोई इरादा न था—विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि प्रस्तावक तथा रियासतों के कतिपय प्रतिनिधियों के मध्य एक समझौता हो चुका हो। इस विषय की चर्चा उठाते समय संघीय विषयों के सम्बन्ध में संघ तथा प्रान्तों के क्षेत्रों की बात लाना मेरे विचार से बिल्कुल अनावश्यक है। सर रामास्वामी मुदालियर ने जो यह कहा है कि केन्द्र की शक्ति इन बातों पर निर्भर नहीं है कि उसकी अधीनता में कितने विषय हैं बल्कि इस पर कि उसकी अधीनता में कितने राष्ट्र निर्मायक विषय हैं और केन्द्र के पास सम्पूर्ण क्षेत्र में अपनी शक्ति से काम लेने के साधन कहां

तक मौजूद हैं। परन्तु परिषद् के सामने जो विषय उपस्थित है उस पर विचार करने के लिये यह बात बिल्कुल अप्रासंगिक है। पिछले खंड का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यही है कि कार्रवाई करने के अधिकार का भी विस्तार उसी सीमा तक होना चाहिये जिस सीमा तक व्यवस्थापन अधिकार का हुआ है। यदि संघ को कतिपय कानून पास करने का अधिकार है तो उसे उन कानूनों के अनुसार कार्रवाई करने का भी अधिकार होना चाहिये। यह एक साधारण वैधानिक सिद्धान्त है, जिस पर रियासतों या प्रान्तों के अधिकारों के समर्थकों में से किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

दूसरा प्रश्न यह है कि शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार अमल में कैसे लाया जाये? यह संघ द्वारा नियुक्त व्यवस्था द्वारा सीधे अथवा अस्थायी रूप से रियासत या प्रान्तीय शासन-व्यवस्था के मार्फत अमल में लाया जा सकता है। परन्तु अंतिम अधिकार तथा उत्तरदायित्व संघ का होना चाहिये और उसे संतोष होना चाहिये कि शासन का प्रबन्ध उत्तम है अथवा नहीं। यदि रियासत 'क' या रियासत 'ख' या रियासत 'ग' का शासन-प्रबन्ध उत्तम है तो बड़ी अच्छी बात है। संघ कोई हस्तक्षेप न करेगा। परन्तु यूनियन भर में संघ ही इस बात का एकमात्र निर्णायक है और उस हद तक प्रत्येक रियासत की शासन-व्यवस्था और प्रत्येक प्रान्त की शासन-व्यवस्था संघ की शासन-व्यवस्था के अधीन है। इस संशोधन का उद्देश्य स्पष्ट है। यदि रियासती शासन-प्रबन्ध उत्तमता से कार्य कर रहा है तो आपको हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है और वर्तमान अवस्था ही जारी रहने दी जा सकती है। परन्तु अंतिम अधिकार संघ के पास रहेगा। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे मानने के लिये हम विवश हैं। लेकिन इसका यह भी मतलब नहीं है कि संघ अथवा संघ-शासन-व्यवस्था केवल प्रयोग ही करती रहेगी। वह ऐसा क्यों करे? उदाहरण के लिये, यदि डाक-व्यवस्था अथवा किसी अन्य व्यवस्था का प्रबन्ध किसी रियासत ने उत्तमता से किया है तो संघ को हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसके विपरीत, यदि उस रियासत ने प्रबन्ध उत्तम नहीं किया है तो अंतिम अधिकार संघ के ही पास रहना चाहिये। इस संशोधन का यही सिद्धान्त है और मेरे विचार से किसी भी रियासत को इस पर आपत्ति नहीं हो सकती। दो उग्र विचारधाराओं के बीच यह मध्यवर्ती मार्ग है। एक विचारधारा तो यह है कि संघ को अपना कार्य एक विशेष शासन-व्यवस्था नियुक्त करके तुरन्त आरम्भ कर देना चाहिये। यह इस पक्ष की एकांगी विचारधारा है। दूसरी विचारधारा यह है कि रियासतों में मौजूदा शासन-प्रबन्ध ही जारी रखा जाये– विशेषकर उस अवस्था

[सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

में जब कि वह संतोषजनक हो। प्रस्तुत खंड में यह दृष्टिकोण ग्रहण किया गया है कि संघ-अधिकारी जब यह अनुभव करें कि प्रबन्ध उत्तम नहीं है तो संघ-अधिकारी—और वही एकमात्र परिस्थिति के निर्णायक होंगे—हस्तक्षेप करें। इस सम्बन्ध में कोई भ्रम नही रहना चाहिये। भारतीय-शासन-कानून के खंड 125 के सिद्धान्त का इस विधान में स्पष्ट रूप से परित्याग कर दिया गया है। संघ-अधिकारियों तथा रियासतों के मध्य सलाह-मशविरा करके समझौता करने का कोई प्रश्न नहीं उठता। यह तो संघ के उत्तरदायित्व का प्रश्न है। यह तो दूरदर्शिता की बात है। ऐसा शासन-प्रबन्ध में स्थिरता लाने के विचार से किया गया है। यदि रियासत के शासन-प्रबन्ध के अन्तर्गत किसी विषय की व्यवस्था उत्तम है तो रियासती प्रबन्ध को जारी रखा जा सकता है। परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जहां तक इस खंड और इससे पूर्ववर्ती खंड का सम्बन्ध है, संघ द्वारा पास किये गये कानूनों के अनुसार कार्रवाई करने का अंतिम उत्तरदायित्व संघ का—और केवल संघ का ही है और शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार का कानून बनाने के अधिकार की सीमा तक विस्तार के सिद्धान्त की साधारण रूप से अवहेलना नहीं की गई है। महोदय, मैं इसी आधार पर एन. गोपालस्वामी आयंगर द्वारा उपस्थित संशोधन तथा उसके संशोधित रूप का समर्थन करता हूं।

***श्री के. संतानम्:** महोदय, मुझे प्रसन्नता है कि सर अल्लादी ने संघ-प्रणाली के आधारभूत सिद्धान्त का इतने साफ तथा जोरदार शब्दों में स्पष्टीकरण कर दिया है। मैं फिर उस क्षेत्र में नहीं जाऊंगा। परन्तु सर रामास्वामी मुदालियर ने एक बात ऐसी कही है, जिस पर हमें ध्यान देना चाहिये। आपने कहा है कि रियासतों में लोकतंत्रवाद का प्रसार हो रहा है, इसलिये संघीय विषयों का प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार उनके हाथ में छोड़ देना उतना आपत्तिजनक नहीं है। महोदय, मेरे विचार से ऐसा कहना ठीक नहीं है। रियासतों का लोकतंत्रीकरण जितना ही होता जायेगा उतना ही संघीय तथा प्रान्तीय विषयों का भेद स्पष्ट होता जायेगा। मेरा मत तो यह है। यदि कोई राजा या उसका शासक संघ की अवज्ञा करता है तो उसके विरुद्ध कार्रवाई करना सहज है, क्योंकि उस हालत में संघ-अधिकारियों को जनता का समर्थन प्राप्त होगा। परन्तु यदि संघीय विषय लोकतंत्रवादी रियासतों की अधीनता में चले जाते हैं तो प्रजा के स्वार्थ भी निहित हो जाते हैं। तब प्रजा भी संघ-अधिकारियों की अवज्ञा कर सकती है। इसलिये सभी संघ योजनाओं में यथासम्भव संघ तथा इकाइयों के अधिकारों का भेद स्पष्ट रखा जाता है। सभी

संघीय विषयों में संघ के शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकारों पर जोर दिया जाता है और आन्तरिक विषयों में स्वाधीन इकाइयों को केवल अपने विषयों में ही प्रबन्ध -सम्बन्धी अधिकार दिया जाता है। इस भेद का विस्तार संयुक्त राष्ट्र अमरीका में तो इस सीमा तक किया गया है कि संघ के कानूनों को संघ-अदालतें अमल में लाती हैं और प्रान्तीय कानूनों को प्रान्तीय अदालतें अमल में लाती हैं। आगे जाकर भारतीय संघ को भी इसी सिद्धान्त से काम लेना पड़ेगा। मैं सर रामास्वामी मुदालियर से सहमत हूं कि संघ की शक्ति उसके अधीन विषयों की संख्या पर निर्भर नहीं होती। भारतीय संघ की अधीनता में भी चाहे मुट्ठी भर–चार या पांच–विषय ही हों, किन्तु जब तक संघ का अधिकार इन विषयों पर पूर्ण तथा अखंड रहेगा तब तक उसका मजबूत होना अनिवार्य है। मुझे खेद है कि सर रामास्वामी मुदालियर ने ये प्रश्न उठाये और विशेषकर यह कि संघ की शक्ति किन बातों से बढ़ती है और किनसे नहीं। संघीय विषयों तथा प्रान्तीय विषयों के क्षेत्रों का विस्तार कहां तक होना चाहिये–इस विषय में हममें से कितने ही उनसे बहुत आगे तक सहमत हो सकते हैं। परन्तु प्रस्तुत खंड का इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। संघ के अधिकार में जाने वाले विषयों की व्याख्या करते समय प्रश्न उठता है कि इन विषयों के सम्बन्ध में संघ के अधिकार का विस्तार किस सीमा तक होना चाहिये। इस खंड की यही मुख्य समस्या है। सर अल्लादी ने साधारण सिद्धान्त का उल्लेख तथा स्पष्टीकरण कर दिया है। मेरा तो यह कहना है कि रियासतों के लोकतंत्री होने पर उनके हाथ में संघ सम्बन्धी अधिकार छोड़ देना तो और भी खतरनाक होगा। अखिल भारतीय भावना तथा स्थानीय भावनाओं में सघर्ष हो सकता है और स्थानीय संघर्ष खतरनाक हो सकते हैं। प्रान्तीय अधिकारी फूट डालने वाली शक्तियों को मुक्त कर सकते हैं, जिन्हें आरम्भ से ही रोकने की आवश्यकता है। इसलिये हमें स्पष्ट कर देना चाहिये कि संघ के सभी विषयों में संघ को जब भी वह चाहे कार्रवाई का अधिकार स्वयं ग्रहण करने की स्वतंत्रता रहेगी। अभी अधिकार चाहे किसी रियासत के हाथ में दे दिया जाये, किन्तु जब भी संघ उचित समझे तभी उस अधि कार को ग्रहण करने की सुविधा उसे रहनी चाहिये। यह तर्क कि रियासतों में प्रजा को अधिकाधिक अधिकार मिलता जायेगा–यहां अप्रासंगिक है। बल्कि इस तर्क से तो अधिकार रियासतों के हाथ में छोड़ने के विरोधी पक्ष की ही शक्ति बढ़ती है। इसलिये संघ के हाथ में संघीय अधिकार हमें अक्षुण्ण रहने देना चाहिये। मेरा सुझाव है कि अंतिम मसविदा बनाते समय इस बात के संदेह की कोई गुंजाइश न छोड़ी जाये कि सूची में दिये गये संघ के विषयों के शासन प्रबन्ध को संघ के अधि कारी जब भी चाहेंगे तब ही पुनः अपने हाथों में ले सकेंगे।

श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय (ग्वालियर): श्रीमान् अध्यक्ष महोदय, मैं एक देशी रियासत से आता हूं। मेरे दिल में यह भावना है कि हमारा देश एक मजबूत केन्द्र वाला देश बने। दुर्भाग्यवश हमारे देश के बहुत से टुकड़े हैं। और देशी रियासतों के दिलो में कहीं-कहीं लोकल पैट्रिओटिज्म के जोश में सूबों और प्रान्तों के दिलों में भी यही खयाल है कि हम ज्यादा आटोनामी का इस्तेमाल करें। ऐसा करने से देश एक कमज़ोर देश बन जाता है और हमारा केन्द्र मजबूत नहीं रहेगा।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हम सब लोगों को इतना त्याग करना पड़ेगा और रियासतों को भी इतना त्याग करना पड़ेगा कि वह ज्यादा से ज्यादा सत्ता अपने केन्द्र को दें जिससे कि हमारा केन्द्र और देश मजबूत हो। जैसी हालत आज हमारे देश की है और रियासतों में भी जो एक्जीक्यूटिव पावर जिस तरह से इस्तेमाल होती है, वह भले ही मौजूदा हालत में रियासतों और प्रान्तों में रहे लेकिन इससे ज्यादा पावर नहीं दी जानी चाहिये। फेडरेशन के जो सबजैक्ट्स हैं और जैसा कि मुदालियर साहब ने कहा कि ज्यादा सब्जैक्ट रखने से कोई मजबूत केन्द्र नहीं बनता, यह बात सही है लेकिन कुछ सब्जैक्ट तो बिल्कुल केन्द्र को देने पड़ेंगे और उनकी बाबत फाइनल आथोरिटी रियासतों पर नही छोड़ी जानी चाहिये। रियासतों और प्रान्तों के केन्द्रीय मामले केन्द्र के हाथ में रहने चाहियें। एक्जीक्यूटिव पावर्स जितनी कम हो सके दूसरों पर छोड़ी जाये। केन्द्र के हाथ में ही रहना मुनासिब है। स्वीट्जरलैंड और दूसरी जगहों में वे छोटे-छोटे देश हैं जहां एक्जीक्यूटिव आथोरिटी उसके यूनिटों में छोड़ी जाती है लेकिन हम हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं कर सकते। ऐसा करना खतरे से खाली नहीं है इसलिये हिन्दुस्तान में रियासतों को ज्यादा पावर नहीं दी जानी चाहिये। जितनी फेडरल आथोरिटी रियासतों में है उसको जहां तक हो सके फेडरल मैशिनरी द्वारा इन्तजाम किया जाना चाहिये। लेकिन जहां तक इस क्लाज में है जैसा सर गोपालस्वामी आयंगर ने पेश किया है फिलहाल शुरू में इसकी जरूरत होगी, ऐसा प्रोवीजन रखा जाये। इसमें हमको ऐतराज नहीं होगा; लेकिन मैं देश में मजबूत केन्द्र बनाने को बिल्कुल मुनासिब समझता हूं और रियासतों को इसमें उज्र नहीं करना चाहिये। अगर हमको देश के केन्द्र को मजबूत बनाना है तो फेडरल आथोरिटी के कम से कम कुछ सबजैक्ट्स केन्द्र को देने पड़ेंगे। बगैर इसके हमारा देश तरक्की नहीं कर सकता। इसलिये यह रियासतों और प्रान्तों के हाथ में है कि अगर देश के केन्द्र को मजबूत बनाना है तो वे अधिक से अधिक सत्ता केन्द्र को दे दें। हमको केन्द्र मजबूत करना चाहिये जिसके साथ संचालन और इन्स्पैक्शन की शक्ति भी फेडरेशन को होनी

चाहिये। रियासतें यह मोह न करें कि सत्ता उनके हाथ मे अधिक से अधिक होनी चाहिये। इसलिये फिलहाल मैं इसका कोई विरोध नहीं करता। जैसा यह है, अमेण्डमेण्ट श्री गोपालस्वामी आयंगर का मन्जूर किया जाना चाहिये, लेकिन हमारी भावना यह रहनी चाहिये कि केन्द्र को ज्यादा से ज्यादा मजबूत करें।

***श्री आर.के. सिधवा:** सर गोपालस्वामी आयंगर के भाषण के बाद प्रस्ताव के उद्देश्य के सम्बन्ध में स्थिति का स्पष्टीकरण करके सर अल्लादी ने बहुत ही उत्तम कार्य किया है। आपने निश्चित शब्दों में कह दिया है कि अन्तिम अधिकार संघ के ही पास है। महोदय, हम रियासतों के उन प्रतिनिधियों को बधाई देते हैं, जिन्होंने कृपा करके विधान-परिषद् की कार्यवाही में भाग लिया है और मैं उन रियासतों को भी बधाई देता हूं, जिन्होंने इस विषय में नेतृत्व किया है और दूसरी रियासतों के लिये रास्ता खोल दिया है। मैं उनसे यह भी कहना चाहता हूं कि जब देश का एक भाग लोकतंत्रवाद को अपना रहा है तो दूसरा भाग, जिसमें लगभग 10 करोड़ जनता है, निरंकुश शासन में नहीं रह सकता। यह सदा से हमारा सिद्धान्त रहा है और हम घोषित कर चुके हैं कि जब भारत स्वाधीन होगा तो हम रियासतों की जनता को भी स्वतंत्र करेंगे। इसलिये इस अवसर पर जबकि हम यहां एकत्र हुए हैं--और मुझे प्रसन्नता है कि ऐसा हुआ है--तो हमें नरेशों, उनके प्रतिनिधियों तथा रियासत की जनता से कह देना चाहिये कि हमारा लक्ष्य और हमारी इच्छा क्या है। मुझे प्रसन्नता है कि हमारे कुछ राजे यह महसूस करने लगे हैं कि ऐसे समय जबकि देश के एक भाग में लोकतंत्रवादी शासन चल रहा हो तो दूसरे भाग में वे निरंकुश शासन नहीं चला सकते।

मैं विभिन्न रियासतों की बातें यहां विस्तार से नहीं कहना चाहता, किन्तु मैं कुछ ऐसी रियासतों को जानता हूं, जिनमें न तो स्थानीय संस्थायें हैं और न म्यूनिसिपैलिटियां हैं और जहां धारा-सभाएं हैं वहां नामजद सदस्यों का बहुमत है। अब नामजदगी के दिन लद गये। अब म्यूनिसिपैलिटियों और धारा-सभाओं दोनों ही में निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत होना चाहिये। अब नामजदगी का जमाना नहीं रहा। यदि आप लोकतंत्री रूप देना चाहते हैं तो नामजदगी की प्रथा को बन्द कर दीजिये। मैं नरेशों से निवेदन करूंगा कि उन्हें अपनी धारा-सभाओं में निर्वाचित सदस्य रखने चाहियें और उन्हें प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्यों की तरह काम करने की सुविधा मिलनी चाहिये। जिन रियासतों में स्थानीय संस्थायें नहीं है उनमें निर्वाचित सदस्यों की स्थानीय संस्थायें तथा म्यूनिसिपैलिटियां कायम होनी चाहियें। मैं एक रियासत को जानता हूं जिसमें छापा-खाना खोलने की अनुमति नहीं दी

[श्री आर.के. सिधवा]

गई। यह काफी बड़ी रियासत है। मैं यहां कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहता, जिससे कोई मतभेद उठ खड़ा हो। हमारी भावना अच्छी है और हम राजों से कहना चाहते हैं कि अब हमारे द्वारा रियासती प्रजा को दिये गये वचनों को पूरा करने का समय आ गया है। हम उनसे कहते रहे हैं कि जब हमारी स्वाधीनता का समय आयेगा तो हम आपको भी स्वाधीन करायेंगे और इसीलिये इस अवसर पर मैं रियासतों की जनता से कहना चाहता हूं कि इस बात का प्रयत्न करने में हम कुछ भी उठा न रखेंगे कि रियासतों की जनता का भी शासन उसी प्रकार से होना चाहिये जिस प्रकार से भारत में शासन होता है।

***श्री एम.एस. अणे** (दक्षिणी रियासतें): अक्ष्यक्ष महोदय, जिस संशोधन पर बहस चल रही है वह कुछ महत्वपूर्ण रियासतों के मंत्रियों (जो यहां उपस्थित हैं और जिनकी रियासतों ने हमारी सहायता करने के लिये विधान-परिषद् में भाग लिया है) और ब्रिटिश भारत को प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ गैर सरकारी सदस्यों के प्रतिनिधियों के बीच हुआ एक समझौता है। इसलिये समझौते का महत्व वही समझा सकते हैं, जिन्होंने यह समझौता किया है। अभी हमें सुनना है कि सर गोपालस्वामी आयंगर को क्या कहना है। परन्तु मंत्रियों के दल के एक महत्वपूर्ण सदस्य सर रामास्वामी मुदालियर ने अपने भाषण में बताया है कि इस समझौते को स्वीकार करते हुये, जो इस संशोधन में सम्मिलित कर लिया गया है, उन्होंने क्या दृष्टिकोण ग्रहण किया है। मैं केवल साधारण रूप से विचार प्रकट कर रहा हूं और कोई सुझाव उपस्थित नहीं कर रहा हूं। मुझे तो यह विचार स्पष्ट जान पड़ता है कि साधारण तौर पर संघ के विषयों के सम्बन्ध में शासन सम्बन्धी कार्रवाई रियासत का शासक ही करता रहेगा। परन्तु साथ ही खण्ड में रियासतों को चेतावनी दी गयी है कि शासन-प्रबन्ध के एक न्यूनतम परिमाण की आशा रियासतों से की जाती है। मेरा विचार है कि अभी तो परिषद् की यही भावना है। परिषद् नहीं चाहती कि संघ के अधिकारी रियासतों के शासन-प्रबन्ध में परिवर्तन करने के लिये अपने अधिकारों का प्रयोग करें। परिषद् यह भी आशा करती है कि महान घटनाओं की शक्ति और सामने आने वाली परिस्थितियों का रियासतों के शासकों की मनोवृत्ति पर वांछनीय प्रभाव पड़ेगा। प्रगति के लक्षण दिखाई भी देने लगे हैं। प्रगति आरम्भ हो गयी है और हमें आशा है कि वह कुछ समय तक अबाधित रूप से चलेगी। हमने एक समझौता किया है और अभी तो हम उस आशा पर निर्भर रहेंगे। हम यह भी रियासतों से कह सकते हैं कि समय आने पर जहां

आवश्यकता हुई वहां संघ के अधिकारी अपने अधिकार से काम लेने में हिचकिचायेंगे नहीं। मेरे विचार में खंड की भाषा पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। जिन लोगों को देश का हित प्रिय है उन्हें यह समझने में कोई कठिनाई न होगी कि संघ के अधिकारियों तथा रियासतों के मध्य एक दूसरे के प्रति क्या जिम्मेदारियां हैं और क्या दायित्व हैं। रियासतों द्वारा यूनियनों में भाग लेने को प्रोत्साहित करके और यूनियन तथा रियासतों के मध्य सद्भावना स्थापित करके हम एक शक्तिशाली भारत का निर्माण करना चाहते हैं। हमारा प्रयत्न शक्तिशाली भारत के निर्माण का ही होना चाहिये। इस शक्ति की प्राप्ति संघ के अधिकारियों तथा संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतों के मध्य सहयोग द्वारा ही हो सकती है। इसीलिये संघ-अधिकारियों की नीति एकता बनाये रखने की होगी। रियासतों के लिये उचित तो यह है कि वे प्रजा को शासन में हिस्सा देकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करें और यह भी जितना सम्भव हो उतनी शीघ्रता से करना चाहिये।

इन कुछ शब्दों के साथ मैं संशोधन का समर्थन करता हूं।

***सर बी.एल. मित्तर:** यह बड़े आश्चर्य की बात है कि एक ऐसे संशोधन के सम्बन्ध में, जो बिल्कुल निर्दोष है और जिसके विषय में समझौता हो चुका है, इतनी ओजस्विता दिखायी गयी है और इतनी गर्मागर्मी हुई है। आखिर इस संशोधन का मतलब क्या है? इसके मतलब दो हैं। संशोधित खण्ड का पहला मतलब तो यह है कि इसके द्वारा संघ की सर्वोपरिता स्वीकार कर ली गयी है। उसके अन्तिम शब्द इस प्रकार हैं–"जब तक कि उपयुक्त संघ-अधिकारी इस सम्बन्ध में कोई और प्रबन्ध न कर ले–उन रियासतों में जहां यह आवश्यक समझा जाये।" इससे प्रकट है कि अन्तिम निर्णयकर्ता संघ-अधिकारी ही है। इस खण्ड के प्रथम भाग में जो यह कहा गया है कि "संघ में सम्मिलित होने वाली किसी रियासत के शासक का प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार, जहां तक उस अधिकार का सम्बन्ध संघ के विषयों से हो, उस रियासत में कायम रहेगा" तो इसमें केवल मौजूदा स्थिति को ही कायम रखा गया है।

इस परिषद् द्वारा हमने जिस विधान का निर्माण किया है वह कोई अवास्तविक वस्तु नहीं है। हमें देश के कुछ तथ्यों पर उसी रूप में विचार करना चाहिये जिस रूप में वे हैं और उन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये ही नये विधान का निर्माण करना चाहिये। एक तथ्य यह भी है कि कुछ बड़ी रियासतों में कतिपय केन्द्रीय विषयों का प्रबन्ध भी रियासती अधिकारियों द्वारा होता है। इससे किसी

[सर बी.एल. मित्तर]

की परेशानी नहीं बढ़ी है। इससे कार्य की उत्तमता में अन्तर नहीं पड़ा है। यदि ऐसा है तो यही आगे भी होता रहेगा। यदि आपको बाद में जाकर ज्ञात होता है कि अधिकार का दुरुपयोग हुआ है अथवा कार्य की उत्तमता में अन्तर आया है तो आप दूसरा प्रबन्ध कर सकते हैं। यह तो सरल खण्ड है, जिसमें दो सिद्धान्तों का समावेश किया गया है : प्रथम संघ-अधिकारी की सर्वोपरिता और दूसरे वर्तमान स्थिति को कायम रखना।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** महोदय, एक ऐसे प्रश्न पर, जो महत्वपूर्ण तो अवश्य है किन्तु जिसके सम्बन्ध में विरोधी मत वालों के मध्य समझौता हो चुका है, बड़ी मनोरंजक बहस हो चुकी है। एक घण्टे या उससे भी अधिक समय से जो ओजस्वी भाषण हुये हैं उनमें मैं और वृद्धि नहीं करना चाहता। महोदय, मुझे तो केवल यही कहना है कि इस खण्ड का मूल सिद्धान्त यही है कि संघ के प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार का विस्तार उसी सीमा तक है जिस सीमा तक उसे कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है और यह भी कि साधारण रूप से संघ के विषयों के समुचित प्रबन्ध का उत्तरदायित्व स्वयं संघ पर है। परन्तु हमने कुछ वर्तमान तथ्यों को ध्यान में रखा है कि नये विधान के अन्तर्गत जो विषय संघ की अधीनता में जायेंगे उनका शासन-प्रबन्ध कुछ बड़ी रियासतों के ही हाथ में है। हमने व्यवस्था की है कि मौजूदा स्थिति कायम रहेगी, किन्तु इस पर संघ का सर्वोपरि नियंत्रण रहेगा—जब भी वह ऐसा करना चाहे। इस स्थिति से हम किसी प्रकार हट नहीं सकते। जैसा कि सर बी.एल. मित्तर कह चुके हैं, संघीय विषयों के शासन-प्रबन्ध का सर्वोपरि अधिकार संघ को दिया गया है। सर रामास्वामी मुदालियर ने जो स्थिति ग्रहण की है उसे मैं उलट देना चाहता हूं। उनकी धारणा यह जान पड़ती है कि साधारण सिद्धान्त यह रहना चाहिये कि संघीय विषयों का प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार रियासतों के पास रहे, किन्तु कुछ अपवादों की अवस्था में जहां आवश्यक हो संघ शासन-प्रबन्ध स्वयं ग्रहण कर सकता है। मैं यह कहना चाहता हूं कि संघीय विषयों के शासन-प्रबन्ध के लिए स्वयं संघ उत्तरदायी है, किन्तु जिन रियासतों में संघीय विषयों का शासन प्रबन्ध आजकल स्वयं रियासतों द्वारा हो रहा है और उत्तम रूप से हो रहा है उनमें वह तब तक हस्तक्षेप न करेगा जब तक वह इसकी आवश्यकता महसूस न करे।

एक संशोधन में कहा गया है कि संघ को किसी रियासत से शासन-प्रबन्ध संघ-कानून द्वारा लेना चाहिये, न कि संघ-अधिकारी द्वारा जैसा कि खण्ड में कहा

गया है। मैं इस संशोधन के प्रस्तावक का ध्यान केवल एक परराष्ट्र विषय की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। परराष्ट्र विषय के क्षेत्र में कानून द्वारा बहुत कम कार्रवाई होती है और अधिकांश कार्रवाई शासन-प्रबन्ध के ही स्तर पर होती है। ऐसी अवस्था में रियासतों में परराष्ट्र विषयों के शासन-प्रबन्ध के लिये संघीय कानून की शरण में जाना हमारे लिये बिल्कुल अनावश्यक होगा।

जहां तक प्रस्तुत विषय का सम्बन्ध है संघीय विषयों के शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से रियासतों तथा प्रान्तों की तुलनात्मक स्थिति में कुछ भी अन्तर नहीं है, जैसा कि सर रामास्वामी मुदालियर कहते थे। भेद केवल यही है कि जब कि कुछ रियासतें कुछ संघीय विषयों का प्रबन्ध कर रही हैं, प्रान्त नहीं कर रहे हैं। परन्तु जहां तक उन विषयों के शासन-प्रबन्ध के अधिकार का सम्बन्ध है, प्रान्तों और रियासतों की स्थिति में कुछ भी अन्तर नहीं है। प्रान्तों और रियासतों का वास्तविक अन्तर केवल यही है कि उनमें आंतरिक शासन भिन्न प्रणालियों द्वारा चल रहा है। मैं इस विस्तृत क्षेत्र में नहीं आना चाहता, जिसके विषय में कई सज्जन कह चुके हैं, किन्तु मैं तो सिर्फ एक ही बात का समर्थन करना चाहता हूं और सिर्फ उसी पर जोर देना चाहता हूं, जिसकी ओर श्री सन्तानम् ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं और वह यह है कि रियासतों में लोकतंत्रीय संस्थायें कायम होने पर संघीय विषयों का शासन-प्रबंध संघ द्वारा ग्रहण करने की आवश्यकता कम नहीं, अधिक ही पड़ेगी। आखिर हमें इस बात पर ध्यान देना ही पड़ेगा कि संघ-शासन का मुख्य सिद्धान्त केन्द्र तथा इकाइयों के मध्य शासन-प्रबन्ध का विभाजन है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस स्थिति को स्वीकार करने में हिचकिचाहट क्यों अनुभव की जा रही है, क्योंकि किसी रियासत के शासक और प्रजा को जिस प्रकार उस रियासत के विधान को मानना पड़ता है उसी प्रकार उन्हें संघ के विधान को भी मानना पड़ेगा। संघ की धारा सभा में रियासतों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा और यदि कभी किसी संघीय विषय के सीधे शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में संघ-कानून पास हुआ तो उस कानून के पास होने में रियासतों के प्रतिनिधियों का भी हाथ रहेगा। इसलिये मुझे इसका कोई कारण नहीं दिखायी देता कि प्रान्तों में जिस सिद्धान्त का अनुसरण किया गया है उसे रियासतों में उलट दिया जाये। महोदय, एक ऐसे विषय के सम्बन्ध में मैं अधिक नहीं कहना चाहता, जिस पर समझौता हो चुका है। मेरा खयाल है कि परिषद् मेरे संशोधन को स्वीकार करने के पक्ष में है। मैं और कुछ नहीं कहना चाहता।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन पर मत लूंगा। सबसे पहले मैं खण्ड में उन चार या पांच शब्दों के जोड़ने के संशोधन को लेता हूं, जिसे सर गोपालस्वामी ने स्वयं

[अध्यक्ष]

ही उपस्थित किया था। संशोधन है कि खण्ड के अन्त में ये शब्द जोड़ दिये जायें:

"उन रियासतों में जहां यह आवश्यक समझा जाये।"

मैं समझता हूं कि परिषद् इसे स्वीकार करती है।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अन्य संशोधन भी उपस्थित किये गये हैं।

श्री चंद्रशेखरिया का संशोधन है कि खंड 9 के स्थान पर निम्न शब्द रखे जायें:

"संघ में सम्मिलित होने वाली किसी रियासत के शासक का शासन-प्रबंध सम्बंधी अधिकार, जहां तक उस अधिकार का सम्बन्ध संघ के विषयों से हो, उस रियासत में कायम रहेगा, किन्तु संघ के प्रधान प्रबंधक को निरीक्षण तथा निर्देशन का अधिकार रहेगा।"

प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

श्री हिम्मतसिंह माहेश्वरी का संशोधन यह है कि खण्ड 9 के स्थान पर निम्न शब्दों को रखा जाये:

"विधान में इसके विपरीत चाहे जो हो, संघ में सम्मिलित होने वाली किसी रियासत के शासक का प्रबंध सम्बन्धी अधिकार, जहां तक उस अधिकार का सम्बन्ध संघ के विषयों से हो, जिनके सम्बन्ध में उस रियासत के लिए संघ व्यवस्थापिका सभा को कानून बनाने का अधिकार है, कायम रहेगा, सिवाय उस अवस्था के जबकि संघ का प्रबंध सम्बन्धी अधिकार रियासत में इस प्रकार काम में आने को हो कि संघीय कानून के द्वारा शासक के प्रबंध सम्बन्धी अधिकार का निराकरण कर दिया गया हो।"

प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

अब मैं मूल प्रस्ताव को सर गोपालस्वामी द्वारा संशोधित रूप में मत लेने के लिये उपस्थित करता हूं।

खण्ड 9 संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि आरम्भ में श्री श्रीप्रकाश ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया था और उस प्रस्ताव को तीन सदस्यों की एक समिति के सुपुर्द किया गया था कि वह प्रस्ताव का नया मसविदा तैयार करके उपस्थित करे। यह मसविदा तैयार है; यदि माननीय सदस्य उसे आज ही पास करना चाहें तो।

***अनेक माननीय सदस्यः** हां, महोदय।

***श्री श्रीप्रकाशः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"विधान-परिषद् में उसकी रचना, चुनाव की प्रणाली तथा सदस्यता समाप्त होने के विषय में जो व्यवस्था की गयी है उसके बावजूद सम्राट की सरकार के 3 जून 1947 के वक्तव्य के अनुसार हुए तथा होने वाले सभी चुनावों को नियमानुकूल माना जायेगा और इस प्रकार चुनी गयी विधान-परिषद् सदा नियमानुकूल निर्वाचित विधान-परिषद् मानी जायेगी और उसकी अब तक जो कार्यवाही हुई है उसे भी नियमानुकूल माना जायेगा।"

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रांत और बरार : जनरल): महोदय, क्या मैं सुझाव उपस्थित कर सकता हूं कि विधान-परिषद् की नियमावली के खण्ड 68 में उठने वाली कठिनाइयों के निराकरण की व्यवस्था की गयी है। इसके अनुसार अध्यक्ष को अधिकार दिया गया है कि.....।

***अध्यक्षः** उपस्थित कठिनाइयों को दूर करने के लिये प्रस्ताव उपस्थित किया गया है। क्या कोई इसके सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता है?

(कोई सदस्य नहीं उठा।)

तो मैं इस प्रस्ताव पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** परिषद् सोमवार 10 बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

तब परिषद् सोमवार, 28 जुलाई, 1947 के प्रातःकाल 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गयी।